CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्ददास कृत

रासपंचाध्यायी

अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नन्ददास कृत

रासपंचाध्यायी

नन्ददास कृत रासपंचाध्यायी की मूल सहित समीक्षा एवं व्याख्या

नवीन संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

लेखक

प्रो. विश्वम्भर 'अरुण' एम. ए.

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग

आगरा कॉलेज, आगरा

प्रकाशक

अशोक प्रकाशन

2615, नई सड़क, दिल्ली-6

फोन : 3262976

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
जगदीश चन्द्र गुप्त
अशोक प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-110006
दूरभाष : 3262976

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन हैं

नवीन संस्करण : 1994
मूल्य : 25.00

लेजर कम्पोजिंग
जय कम्प्यूटर, , नकुल गली, विश्वास नगर, दिल्ली-32
फोन : 2411483
मुद्रक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...ालय-ग्रन्थालय, भरतनिधि, करौंदी वाराणसी-5

दो शब्द

यह हमारे लिए अत्यन्त हर्ष गर्व एवं संतोष का विषय है कि हमारे द्वारा प्रकाशित सभी टीका तथा व्याख्या ग्रंथों का विद्यार्थी जगत में पर्याप्त समादर हुआ है। उन्हीं लब्धप्रतिष्ठ टीका ग्रंथों की शृंखला में प्रस्तुत टीका ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

नन्ददास अष्टछाप के प्रमुख कवियों में से हैं। इनकी रचनाएँ रासपंचाध्यायी और भँवरगीत का प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में अध्ययन और अध्यापन होता है। किन्तु भाषाँ की कठिनता के कारण यह ग्रंथ विद्यार्थी जगत के लिए दुरुह प्रतीत होता है। अतः विद्यार्थी इनके पदों की व्याख्या की अधिक आवश्यकता अनुभव करते थे। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया गया है।

यद्यपि बाजार में अन्य टीकाएँ भी उपलब्ध हैं; किन्तु प्रस्तुत टीका अद्यतन होने के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें कठिन शब्दों के अर्थ, सारगर्भित प्रसंग एवं सुविस्तृत व्याख्या प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। इन सभी उपादेय तत्त्वों के कारण प्रस्तुत टीका विद्यार्थियों के लिए संग्रहणीय है।

प्रस्तुत टीका को लिखने का श्रेय प्रो. विश्वम्भर 'अरुण' को है, जोकि हिन्दी जगत के सुपरिचित एवं अनुभवी परीक्षा मर्मज्ञ लेखक हैं। अतः हम उनको बधाई देते हैं।

—प्रकाशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

आलोचना भाग

1- नन्ददास : जीवन परिचय 1
2- नन्ददास : काव्य रचनाएँ 10
3- रासपंचाध्यायी की भावभूमि 12
(क) भँवरगीत की भावभूमि 17
4- नन्ददास की भक्ति 19
5- नन्ददास का काव्यसौष्ठव 26
6- भँवरगीत परम्परा और उसमें नन्ददास का स्थान ... 41

व्याख्या भाग

रासपंचाध्यायी

प्रथम अध्याय 49
द्वितीय अध्याय 92
तृतीय अध्याय 105
चतुर्थ अध्याय 109
पंचम अध्याय 117
परिशिष्ट ... ... 13[illegible]

Dr. Urmila Sharma Collection; Varanasi.

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य-ग्रन्थालय, भरतमिलाप, करौंदी वाराणसी-5

1 नन्ददास : जीवन परिचय

हमारे प्राचीन मनीषी, सन्त और कवि परमार्थ-चिंतन में इतने लीन रहते थे कि उन्हें कभी भी लौकिक यश और कीर्ति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती थी। यही कारण है कि कुछ एक अपवादों को छोड़कर हमें प्राय: सभी प्राचीन कवियों के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी बहुत कम ही मिल पाती है। किसी भी कवि के जीवन का परिचय प्रस्तुत करने के लिए हमें अन्तर्साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य का आश्रय लेना पड़ता है। चूंकि प्राचीन कवि अपने सम्बन्ध में कुछ भी कहने से हिचकते थे, अत: हम अन्तर्साक्ष्य के आधार पर बहुत अधिक काम नहीं चला सकते।

नन्ददास अष्टछाप के प्रसिद्ध आठ भक्त-कवियों में से अन्यतम थे। न केवल अष्टछापी कवियों में अपितु सम्पूर्ण भक्तिकालीन कवियों में नन्ददास की विशिष्टता को साहित्य-मर्मज्ञों ने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। नन्ददास अपनी अनुपम भाव-माधुरी तथा कला-चातुर्य के कारण सदैव से सहृदयों के आकर्षण का केन्द्र-विन्दु बने हुए हैं। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसे लोकप्रिय कवि के जीवन के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। नन्ददास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपनी कृतियों में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया है। जहां कहीं भी थोड़ी-बहुत जानकारी हमें उनकी कृतियों द्वारा मिलती भी है तो वह सांकेतिक रूप में ही है। नन्ददास की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, वंश, जाति आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में भी हमें प्रामाणिक ढंग से कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाते। चूंकि नन्ददास वल्लभ कुल जैसे प्रसिद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, अत: हमें उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में अवश्य ही कुछ जानकारी उपलब्ध हो जाती है और प्रमाणिक तौर पर यह भी पता चल जाता है कि वे वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित कृष्ण-भक्त कवि थे और उनके गुरु श्री विठ्ठलनाथजी थे।

अष्टछापी कवियों में से श्री विठ्ठलनाथ के शिष्यों का विवरण देनेवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तक 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' से नन्ददास के जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानकारी मिलती है। इस कृति से पता चलता है कि नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे और विषयों में सदैव अनुरक्त रहनेवाले जीव थे। इस ग्रन्थ में एक क्षत्री-कन्या पर इनके मुग्ध हो जाने की कहानी भी बड़े विस्तार से दी हुई है। क्षत्री-कन्या के परिवार के साथ-साथ ये यमुना नदी के किनारे पहुँचे और वहीं पर इन्हें गोस्वामी विठ्ठलनाथ के दर्शन हो गए। गोस्वामीजी से प्रभावित होकर ये उनके शिष्य हो गए। तुलसीदास को जब इनका पता चला तो उन्होंने इन्हें काशी आने के लिए बुला भेजा, किन्तु ये वहाँ नहीं गए और यहीं रहकर ग्रन्थों की रचना करने लगे। इसी ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि किसी हिन्दू राजा की पुत्री रूपमंजरी के रूप पर भी ये मुग्ध हुए थे। यह रूपमंजरी अकबर बादशाह की विवाहिता दासी थी; किन्तु यह अपने उस पति का स्पर्श नहीं करती थी। नन्ददास के प्रेम में अनुरक्त होने के कारण रूपमंजरी उनसे गुप्त रूप से मिलने जाया करती थी। बाद में जब अकबर ने इस सम्बन्ध के बारे में जानकारी चाही तो नन्ददास ने अपनी देह त्याग दी। नन्ददास के देह-त्याग का समाचार सुनकर रूपमंजरी भी परलोकवासिनी हो गई। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने दोनों के देह-त्याग के इस वृत्तांत को सुनकर उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। नन्ददास की प्रेयसी 'रूपमंजरी' का उल्लेख 'श्री गोवर्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता' में भी मिलता है। साथ ही नन्ददास की कृतियों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि इनका कोई परम रसिक मित्र भी था जिसकी प्रेरणा से इन्होंने इन रचनाओं का प्रणयन किया होगा। उदाहरणार्थ देखिए—

"परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहै॥
तिन कही दशम स्कंध जु आहि। भाषा करि कछु बरनो ताहि॥"

—भाषा दशम स्कंध

× × ×

"परम रसिक इक मीत मोहि तिन आज्ञा दीन्ही।
ताते मैं यह कथा जथामति भाषा कीन्ही॥"

—रास पंचाध्यायी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइक भेद नहीं सुन्यो।
तासों नन्द कहत तब उतरू। मूरख जनमत मोहित दुतरू॥"

—रसमंजरी

नन्ददासजी के यह रसिक मित्र कौन हैं?—इस बारे में यद्यपि प्रामाणिक तौर से तथ्य उपलब्ध नहीं होते तथापि 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर यह अनुमान होता है कि यह रूपमंजरी ही रही होगी। अपनी प्रसिद्ध कृति 'रूपमंजरी' का नामकरण भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है। साथ ही कवि का 'मंजरी' नाम के प्रति अतीव रुझान भी विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, रूपमंजरी और अनेकार्थ मंजरी जैसी कृतियों में संयुक्त होने से दीख पड़ता है। उनकी कृति 'रूपमंजरी' को देखने से भी यही विदित होता है कि उसकी नायिका भी प्रस्तुत रूपमंजरी ही रही होगी। 'रूपमंजरी' कृति में रूपमंजरी की प्रिय सहचरी इन्दुमती का उल्लेख भी आता है। यह इन्दुमती स्वयं नन्ददास के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। इस कृति में कवि नायिका रूपमंजरी के सौंदर्य का वर्णन तन्मय भाव से करते समय स्वयं कह देता है—

"रूपमंजरी छवि रहन, इन्दुमति कौन।"

किन्तु उपर्युक्त बातों से नन्ददास के जीवन-वृत्त पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। केवल यही मालूम पड़ता है कि ये तुलसीदास के भाई थे। साथ ही ये बड़े रसिक जीव थे, किन्तु बाद में श्रीकृष्ण की भक्ति में पड़कर इनकी रसिकता उदात्त हो गई थी। इनके गुरु विट्ठलनाथ थे और यह श्रीकृष्ण के परम भक्त थे।

नाभादास कृत 'भक्तमाल' में हमें दो नन्ददासों का उल्लेख मिलता है जिनमें एक ऐसे नन्ददास का उल्लेख है जो बरेली के समीपवर्ती ग्राम मोहबेली के रहनेवाले हैं। वे साधु-सेवी ब्राह्मण हैं। इन नन्ददास के बारे में विशेष कुछ नहीं कहा गया है। अतः ये ख्यातिप्राप्त कवि नददास नहीं हो सकते।

द्वितीय नंददास के सम्बन्ध में जो पद है वह इस प्रकार है—

"श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक प्रमुदित रंगमगे।
लीलापद रसरीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकल सुकुल संकलित भक्त पद रेनु उपासी ।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेमपथ में पगे ।।"

इस छन्द से निम्न बातें स्पष्ट हैं—

(१) नन्ददास माधुर्य भाव की भक्ति रखनेवाले वैष्णव जन थे। वे रसिक जीव भी थे।

(२) उन्होंने दो प्रकार की रचनाएँ कीं—लीलापद-सम्बन्धी और रसरीति-सम्बन्धी।

(३) रामपुर ग्राम के निवासी थे।

(४) वे 'सुकुल' थे अर्थात् अच्छे कुल के थे अथवा सुकुल जाति के ब्राह्मण थे।

(५) चन्द्रहास उनके भाई थे।

'भक्तमाल' में आये इस उल्लेख से स्पष्ट है कि नंददास 'भक्तमाल' के रचना-काल तक एक भक्त और ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे। ये रामपुर में रहते थे तथा इनका भाई चन्द्रहास था।

नन्ददास का रामपुर निवासी होना एक और बात से भी सिद्ध होता है। एटा जिले में सोरों के निकट एक गाँव है जिसे रामपुर कहते हैं। सोरोंवासी एक सज्जन के पास 'सूकर क्षेत्र महात्म्य' 'वर्षफल' और 'रामचरितमानस' की हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित मिली हैं। इनमें से प्रथम कृति के अन्त में कृतिकार कृष्णदास ने अपनी वंशावली दी है। उस वंशावली से पता चलता है कि कृष्णदास रामपुर निवासी नन्ददास का पुत्र था। उस वंशावली से यह भी विदित होता है कि नन्ददास के पिता जीवाराम आत्माराम के छोटे भाई थे, और आत्माराम तुलसीदास के पिता के रूप में प्रसिद्ध हैं ही। नन्ददास के भाई का नाम चन्द्रहास था और उनका वंश सुकुल नाम से प्रसिद्ध था। इससे यह भी विदित होता है कि ये वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे। दूसरी कृति 'वर्षफल' में भी उपर्युक्त वंशावली-सम्बन्धी कुछ संकेत मिलते हैं, साथ ही यह भी पता चलता है कि नन्ददास ने अपने गाँव रामपुर का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था। तीसरी कृति खण्डित रूप में ही मिलती है। ये तीनों हीं कृतियाँ सं० १६४३ वि० से लेकर सं० १६७० वि० के बीच लिखी गई हैं। अतः इनसे स्पष्ट होता है कि कृष्णदास का जीवन-काल विक्रम की १७वीं शताब्दी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...कोष, करौंदी
वाराणसी-5

यदि ये प्रतियाँ प्रामाणिक हैं तो नन्ददास का जीवन-काल निश्चित रूपेण इससे कुछ वर्षों पूर्व का सिद्ध होता है। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास का जीवन-काल भी सं० १६४० एवं सं० १६८० के बीच माना जाता है और उक्त कृष्णदास का जीवन-काल भी लगभग यही विदित होता है। अत: नन्ददास का जीवन-काल सं० १६४० के आसपास माना जा सकता है। किन्तु साथ ही जो अड़चन आती है वह है कृष्णदास के उपर्युक्त ग्रन्थों में मिलनेवाले तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी तथ्य। क्योंकि इधर उपलब्ध सामग्री से तुलसीदास के जीवन के सम्बन्ध में जो तथ्य मिले हैं वे इससे मेल नहीं खाते। 'मूल गोसाईं चरित' से यह पता चलता है कि तुलसीदास राजापुर जिला बाँदा के मूल निवासी थे। उसमें तो यह भी दिया हुआ है कि कोई 'नन्ददास कनौजिया' उनके गुरुभाई थे और इसीलिए तुलसीदास इनसे बड़े प्रेमभाव से मिले थे—

"नंददास कनौजिया प्रेम मढ़े। जिन सेष सनातन तीर पढ़े।।
सिच्छा गुरुबंधु भये तेहिते। अति प्रेम सो आय मिले यहि ते।।"

किन्तु दूसरी ओर ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि नन्ददास तुलसीदास के भाई थे और रामपुरवासी थे। तुलसीदास की पत्नी मानी जानेवाली रत्नावली से सम्बन्धित एक रचना 'रतनावली चरित' मिलती है जिसमें एक स्थल पर नंददास के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। देखिए—

"तहाँ रामपुर के सनाढ्य। सुकुल वंशधर है गुनाढ्य।।
तुलसीदास अरु नन्ददास। पढ़त करत विद्यां-विलास।।
एक पितामहँ पौत्र दोउ। चन्द्रहास लघु अपर सोउ।।
तुलसी आत्मारामपूत। उदर हुलासों के प्रसूत।।
गये दोउ तें अमर लोक। दादी पोतहि करि सशोक।।
बसत जोग मारग समीप। विप्रवंश कर दिव्य दीप।।"

एक अन्य स्थान पर भी इस प्रकार उल्लेख है—

"नन्ददास और चन्द्रदास। रहता महिं रामपुर पास।।
दम्पति बसि बारह घाम। लहत मोदु आठहु याम।।"

पं० रामवल्लभ मिश्र (पं० मुरलीधर चतुर्वेदी के शिष्य) के हाथ की लिखी 'रत्नावली चरित' की प्रति में मुरलीधर के कुछ छप्पय भी मिलते हैं। एक छप्पय इस प्रकार है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"एक पितामह सदन दोउ जनमें बुधिरासी ।
दोउ एकहि गुरु नृसिंह बुध्य अन्तेवासी ।
तुलसीदास नन्ददास मते द्वे मुरली धारे ।
एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महँ बसै ।
एक मते सियाराम एक घनश्याम पुकारे ।
एक राम गाथा लिखि एक भागवत् पद्र कहै ।।"

इसी प्रति में कृष्णदास की वंशावली भी दी हुई है। जो वंशावली इस प्रकार है—

"सेत बारह समीप शुचि गाम रामपुर एक ।
तहँ पंडित पंडित बसत सुकुलवंश सविवेक ।।
पंडित नारायण सुकुल तासु पुरुष परधान ।
धारयो सत्य सनाढय पद ह्वै तप वेद निधान ।।
शास्त्र शास्त्र विद्या कुशल भे गुरु द्रौण समान।
ब्रह्मरन्ध्र जिन भेदि जिन पायो पद निर्वाण ।।
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भए पिता अनुहारि ।
पंडित श्रीधर शेषधर सनक स्नातक चारि ।।
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द ।
व्यास सरिस वक्ता तनय जासु सच्चिदानन्द ।।
तेहि सुत आत्माराम बुध निगमागम परवीन ।।
लघु सुत जी।।राम ये पंडित धरम धुरीन ।।
पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चन्ददास ।।
मथि मथि वेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास ।
रामचरितमानस रच्यौ पंडित तुलसीदास ।।
वल्लभ-कुल वल्लभ भये :.ासु अनुज नन्ददास ।
धरि वल्लभ आचार जिन रच्यौ भागवतरास ।।
नन्ददास सुतहों भयो कृष्णदास मतिमंद ।
चन्ददास बुध सुत अहै चिरजीवी व्रजचन्द ।।"

इससे स्पष्ट होता है कि तुलसीदास और नन्ददास चचेरे भाई थे। वंशावली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उनका वंशवृक्ष इस प्रकार है :

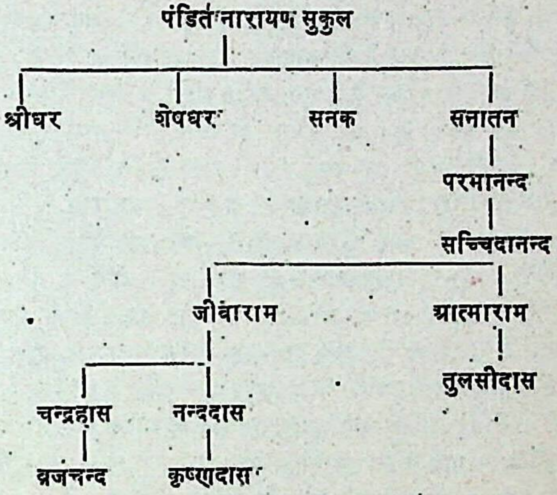

इन्हीं कृष्णचन्द की 'वर्षफल' और 'वंशावली' की कृतियाँ पाई जाती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँच सकते हैं कि नन्ददास के जीवन के सम्बन्ध में निश्चित रूपेण कुछ भी कह सकना कठिन है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर हम नन्ददास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में निम्न प्रकार से कह सकते हैं :—

नन्ददास का जन्म डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार सं० १५६४ में हुआ होगा। श्री द्वारिकादास नन्ददास का जन्म-संवत् १५६० अनुमानित करते हैं। वास्तव में नन्ददास के जन्म-संवत् के सम्बन्ध में हमें कहीं भी निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं—केवल अनुमान पर आश्रित रहकर ही हम कुछ कह सकते हैं। सूरदास की 'साहित्यलहरी' की रचना-तिथि सं० १६०७ मानी गई है, और साहित्यलहरी में एक स्थान पर स्पष्ट उल्लेख है—

"नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन।"

अवश्य ही नन्ददास इस समय तक लगभग बीस वर्ष की उम्र के रहे होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो भी हो नन्ददास का जन्म सं० १५९० के आसपास हुआ होगा—ऐसा अनुमान होता है। वे ब्राह्मण थे और गुसाईं जी के चार सेवकन की वार्त्ता के अनुसार वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। कृष्णदास के 'रतनावली चरित' आदि ग्रन्थों से भी यही बात पुष्ट होती है। जन्म-स्थान सोरों के निकट रामपुर नामक ग्राम ही माना जा सकता है। यह रामपुर ही श्यामपुर के नाम से भी प्रसिद्ध है। उपलब्ध सामग्री से ही यह अनुमान भी होता है कि उनके पिता जीवाराम सनाढ्य थे जो सोरों निवासी तुलसीदास के पिता आत्माराम के सगे भाई थे। नन्ददास के एक छोटे भाई चन्द्रहास भी थे। नन्ददास और तुलसीदास दोनों के ही पिताजी का देहांत बाल्यकाल में हो गया था। दोनों ने रामानन्दी पंडित नरहरि से शिक्षा प्राप्त की थी। ऐसा विदित होता है कि अपने बड़े भाई तुलसीदास के समान ये भी पहले राम-भक्त थे किन्तु बाद में मथुरा पहुँच जाने और विठ्ठलनाथ जी के सम्पर्क में आ जाने के पश्चात् वे श्रीकृष्ण के परम भक्त हो गए। ये बड़े रसिक और उदण्ड स्वभाव के व्यक्ति थे। क्षत्री-कन्या पर ये अपने रसिक स्वभाव के कारण ही आसक्त हो गए थे, और उसके पीछे-पीछे ही गोकुल पहुँचकर विठ्ठलनाथ की सेवा में उपस्थित हो गए थे। विठ्ठलनाथ जी की सेवा में आ जाने के पश्चात् इनकी रसिकता का उदात्तीकरण हुआ और ये पक्के कृष्ण-भक्त हो गए। इन्हें विधिवत् सम्प्रदाय में दीक्षित किया गया और अष्टछापी कवियों में उन्हें स्थापित किया गया। कहा जाता है कि महाकवि सूरदास की आज्ञा से इन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। फलतः रामपुर वापस आकर कमला नाम की कन्या से विवाह किया। इन्हें कृष्णदास नाम का पुत्र भी बाद में उपलब्ध हुआ। उपलब्ध सामग्री में यह बताया गया है कि नन्ददास के कृष्णभक्त हो जाने पर एक बार तुलसीदास उनसे भेंट करने को ब्रज में आए थे। वहाँ तुलसीदास ने श्री गोवर्द्धननाथजी के मंदिर में श्रीकृष्ण की मूर्ति के आगे अपना मस्तक नहीं नवाया। नन्ददास ने श्री गोवर्द्धननाथ जी से विनती की कि तुलसीदास को श्रीराम के रूप में दर्शन दीजिए। कहा जाता है यह दोहा उसी समय पढ़ा गया था—

"कहा कहूँ छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नमें, धनुष बाण लो हाथ॥"

तुलसीदासजी को श्रीराम के रूप में दर्शन-लाभ प्राप्त हो गया। नन्ददासजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ ही तुलसीदास ने वहाँ विठ्ठलनाथ तथा सूरदास से भी भेंट की थी।

उपर्युक्त प्रसंगों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास का निवास गोवर्द्धन और मानसी गंगा ही अधिकतर रहा। रामपुर भी वे कुछ दिन रहे होंगे। कवि और भक्त के रूप में उनकी ख्याति विशेष हो गई थी। उन्होंने अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना की थी।

नंददास की जन्म-तिथि के समान ही उनकी निधन-तिथि भी अनिश्चित ही है। वार्त्ता से केवल यह पता चलता है कि उनकी मृत्यु अकबर और बीरबल के सामने हुई और उस समय गोसाईं विठ्ठलनाथ भी जीवित थे। बीरबल अकबर से पहले परलोकवासी हुए थे और उनकी मृत्यु संवत् १६४८ में हुई थी; किंतु गोसाईं विठ्ठलनाथ का गोलोकवास और भी पहले संवत् १६४२ में हो गया था। अतः नन्ददास की मृत्यु संवत् १६४२ से पूर्व ही हुई होगी। डा० दीनदयालु गुप्त ने इसीलिए उनकी मृत्यु-तिथि संवत् १६४० के लगभग अनुमान की है। वार्त्ता के अनुसार इनकी मृत्यु मानसी गंगा पर ही हुई थी जहाँ वे श्रीकृष्ण की मधुर लीला में मग्न रहा करते थे।

आम्नाय-ग्रन्थालय,
... करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2 नन्ददास : काव्यरचनाएं

कविवर नन्ददास की वैसे तो अनेक रचनाएं हैं किन्तु जनसमान्य और साहित्य-जगत् में उनकी दो रचनाएं ही विशेष प्रसिद्ध हैं—'रास पंचाध्यायी' और 'भँवरगीत'। जिस प्रकार जायसी की अनेक रचनाएं साहित्य-जगत् को उपलब्ध हुई हैं किन्तु उनकी कीर्ति का आधार 'पद्मावत' ही है वैसे ही नन्ददास की और भी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं किन्तु उनकी कीर्ति जितनी 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' से है उतनी किसी और कृति से नहीं। प्राचीन ग्रन्थों तथा आधुनिक खोजों के फलस्वरूप हमें नंददास के तीस ग्रन्थों का पता चला है। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) रास पंचाध्यायी
(२) नाममंजरी
(३) अनेकार्थ मंजरी
(४) रुक्मणि मंगल
(५) भँवरगीत
(६) सुदामा चरित
(७) विरह मंजरी
(८) प्रबोध चन्द्रोदय नाटक*
(९) गोवर्धनलीला
(१०) दशम स्कन्ध
(११) रासमंजरी*
(१२) रसमंजरी
(१३) रूपमंजरी
(१४) मानमंजरी*
(१५) ज्ञानमंजरी
(१६) फूलमंजरी
(१७) दानलीला
(१८) मानलीला*
(१९) हितोपदेश
(२०) नामचिंतामणि माला
(२१) नासिकेत पुराण
(२२) श्याम सगाई
(२३) विज्ञानार्थ प्रकाशिका*
(२४) सिद्धांत पंचाध्यायी
(२५) जोगलीला
(२६) रानी भंगो
(२७) कृष्ण मंगल
(२८) रासलीला
(२९) बाँसुरी लीला*
(३०) अर्थ चन्द्रोचय*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त ग्रन्थों की तालिका में जिन ग्रन्थों के नाम के आगे पुष्प अंकित हैं वे अप्राप्य हैं। 'नाममंजरी' 'मानमंजरी' और 'नामचिंतामणि माला' को एक ही ग्रन्थ के तीन नाम बताया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनके बारे में यह संदेह है कि वास्तव में वे नन्ददास कृत हैं भी अथवा नहीं। 'दानलीला', 'हितोपदेश' और 'रासलीला' को किसी अन्य अप्रसिद्ध नन्ददास की कृतियाँ माना गया है। इसी प्रकार 'जोगलीला' को एक अन्य कवि उदयनाथ कृत सिद्ध किया गया है। 'सुदामाचरित' और 'नासिकेत पुराण' की प्रमाणिकता के बारे में भी संदेह है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'नन्ददास ग्रन्थावली' के सम्पादक ब्रजरत्नदास तथा पंडित परशुराम चतुर्वेदी ने नन्ददास के निम्नलिखित १४ ग्रन्थों को ही सर्वमान्य सिद्ध किया है—

१. रसमंजरी
२. अनेकार्थ मंजरी
३. मानमंजरी (नाममंजरी)
४. विरहमंजरी
५. रूपमंजरी
६. दशमस्कन्ध भाषा
७. श्यामसगाई
८. गोवर्धनलीला
९. सुदामाचरित
१०. रुकमणि मंगल
११. रासपंचाध्यायी
१२. भँवरगीत
१३. सिद्धांत पंचाध्यायी
१४. पदावली।

नन्ददास रचित कुछ कृतियाँ ऐसी भी हैं जो किन्हीं कारणवश अलग नाम से जानी जाती हैं। 'पंचमंजरी' किसी एक कृति का नाम न होकर 'रूपमंजरी', 'विरह मंजरी', 'रसमंजरी', 'मानमंजरी' और 'अनेकार्थ मंजरी'—इन पाँच मंजरियों का संकलन है। इसी प्रकार 'मानमंजरी' और 'नाममंजरी को पृथक्-पृथक् माना गया हैं जो वास्तव में भ्रामक है। क्योंकि 'मान' का उल्टा ही 'नाम' होकर 'नाममंजरी' हो गया है। इसी प्रकार ऐसा लगता है कि 'रसमंजरी' को ही कुछ स्थानों पर 'रासमंजरी' नाम से उल्लखित किया गया है, क्योंकि 'रस' और 'रास' में केवल 'आ' की मात्रा का अन्तर है जो लिपिकार की किंचित् भी असावधानी से सर्वथा सम्भव है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि नन्ददास की ख्याति 'रास पंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' के कारण ही है। हम भी प्रस्तुत पुस्तक में कवि की इन्हीं दो प्रसिद्ध रचनाओं का आलोचनात्मक तथा व्याख्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3 रास पंचाध्यायी और भँवरगीत की भावभूमि

नन्ददासजी द्वारा प्रणीत ग्रंथों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं; फिर भी उनके द्वारा प्रणीत कतिपय ग्रंथों के विषय में विद्वान् सहमत हैं। इसीलिए उनके सर्वसम्मत ग्रंथों की सूची में 'रासपंचाध्यायी' 'रूपमंजरी,' 'भँवरगीत,' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। हम यहाँ केवल 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' की भाव-भूमि पर ही प्रकाश डालेंगे।

रासपंचाध्यायी

जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है प्रस्तुत ग्रंथ में ५ अध्याय हैं और उनकी विषय-भूमि रास-लीला है। यह विशेषत: भागवत पर ही आधारित है। हम यह तो नहीं कह सकते कि प्रस्तुत ग्रंथ भागवत का अविकल अनुवाद है; हाँ, इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं तो ज्यों का त्यों और कहीं-कहीं छायानुवाद मिलता है। भागवत से कथा ली अवश्य गई है परन्तु नन्ददासजी ने उसमें कहीं-कहीं मौलिक उद्भावनाएँ भी कर ली हैं। किसी प्रसंग या वर्ण्य-वस्तु के वर्णन में न्यूनाधिक हेर-फेर भी कर लिया गया है, हमारा कहने का तात्पर्य यहीं है। एक बात और है कि कहीं-कहीं वर्णन भागवत की अपेक्षा अधिक और कहीं-कहीं कम कर दिया गया है।

भाव-भूमि को वर्णित करने से पूर्व हम एक बात कह देना और आवश्यक समझते हैं कि नन्ददास ने भी अन्य भक्त-कवियों की भाँति कृष्ण को विष्णु के लीलावतार के रूप में ही चित्रित किया है, अतएव उनके चरित्र में सभी प्रकार का विरोध देखने को मिलता है।

प्रथम अध्याय—रासपंचाध्यायी के प्रथम अध्याय का प्रारम्भ होता है श्री शुकदेवजी के सौन्दर्य-चित्रण से। देवताओं का सौंदर्य नख-शिख वर्णन नहीं रखा जाता अपितु उनके सौंदर्य-चित्रण में शिख-नख वर्णन की परम्परा को अपनाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। नन्ददासजी ने शुकदेवजी का ऐसा ही वर्णन किया है। इसी अध्याय में रास-लीला-भूमिवाले वृन्दावन का दिव्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस वृन्दावन की भूमि मणिमयी है। वृन्दावन में समस्त वृक्षों की पत्तियों और शाखाओं का दिव्य सौंदर्य मनमोहक है। इसी वन में एक विशिष्ट वृक्ष (कल्पवृक्ष) की ओर भी संकेत किया है जिसकी सभी उपयोगिता पाँचवें अध्याय में उस समय सिद्ध होती है जब वह कृष्ण के आदेश से गोपियों को दिव्य आभूषणों और वस्त्रों का दान करता है। वृन्दावन में किस-किस प्रकार के वृक्ष-लताएँ हैं इनका भी प्रकृति-चित्रण की नामपरिगणन शैली के माध्यम से चित्रण किया गया है। भूमि चिंतामणि के समान है। उसकी कनकाभा है साथ ही कवि कनक की कठोरता को भी भूमि के साथ नहीं रखना चाहता है। अतः वह कहता है—

तापर कोमल कनकभूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत प्रतिबिंब मनो घर मँह दुसरो वन।।

इसी स्थली में एक शंखाकृति का स्थल है। उसपर षोडष दल कमल की आकृति है। इसीपर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। कवि ने यहाँ उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से इस समस्त प्रकृति की उपयोगिता रास के लिए ही सिद्ध की है।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन है। श्रीकृष्ण की अद्भुत छवि के वर्णन कर पाने में कवि अपनी असमर्थता व्यक्त करता हुआ उन्हें मानवीय धरा-तल से उठाकर एक अवतार के रूप में चित्रित करता है। उन्हें वह धर्मारूढ़ और त्रिभुवन के स्वामी नारायण के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

तदनन्तर शरद रजनी का वर्णन किया गया है। शरद रजनी में वृन्दावन की शोभा को वर्णित करते-करते कवि के आल्हाद की सीमा नहीं रहती है। कुछ उदाहरण देखिए—

फटिक छटी-सी किरन कुंज—रंध्रनि जब आई।
मानौं वितनु वितान सुदेस तनाइ तनाउ।।
मंद-मंद चलि चारू-चन्द्रिका अस छवि पाई।
उझकती हैं पिय रमा रमनि कौं मनुतकि आई।।

कवि मुरली का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करता है कि श्रीकृष्ण ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने हाथ में मुरली ली और बजाने लगे तो उसका क्या प्रभाव हुआ। इसके पूर्व वह मुरली की महत्ता और महिमा पर प्रकाश डालता है कि मुरली की ध्वनि से ही आगम-निगमों का उद्भव हुआ है, यही नाद-ब्रह्म की जननी है और समस्त सुखों की दात्री है। ब्रज-बालाएँ इसी के स्वर को सुनकर मोहित होने लगीं।

इसी अध्याय में गोपियों की विरहाकुलता का अत्यंन्त मार्मिक वर्णन प्रस्तुत करते हुए कवि ने यह बताया है कि जो गोपियाँ लोक-लाज के कारण या किसी कार्यवश वृन्दावन की ओर नहीं चलीं उनको करोड़ों रौरवों का कष्ट एक ही पल में मिल गया; किन्तु जब उन्होंने हरि-स्मरण किया तो वे स्वर्ग के सुख का आनन्द प्राप्त करने लगीं जिसे बड़े-बड़े योगी और मुनिजन भी प्राप्त नहीं कर पाते। और जब वे चलने लगीं तो इतनी विभोर थीं कि शृंगार करते समय आभूषणों को भी यथोचित अंगों में नहीं पहन पाईं, परन्तु वे तो थीं कृष्ण की कृपा-पात्री अतः वे आप ही आप यथोचित अंगों में आ गए।

प्रस्तुत अध्याय की समाप्ति की है कवि ने परीक्षित के प्रश्न और श्री शुकदेवजी द्वारा उसके समाधान से। परीक्षित का प्रश्न था कि गुनमय गोपियाँ अपने नश्वर शरीर से कृष्ण को कैसे पा सकीं। शुकदेवजी ने प्रश्न का समाधान किया कि कृष्ण तो सर्वभाव से प्राप्त होते हैं। महत्व भावना का है। गोपियाँ स्वयं श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।

इसके बाद नन्ददास जी ने कृष्ण-गोपी-मिलन दिखाया है। नन्ददास ने गोपियों के प्रति कृष्ण के मन की अनुरक्ति को भी दिखाया है। गोपियों के नूपुरों की ध्वनि सुनकर कृष्ण की आतुरता इतनी बढ़ी की उनका मन और नेत्र सभी कानों के पास सिमटकर आ गए। फिर उनकी समस्त शक्तियाँ नेत्रों के पास सिमटकर आईं। गोपियों के पास आ जाने पर कृष्ण कहने लगे कि इतनी रात गए तुम्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था। इसपर गोपियाँ मंद-मंद मुस्कराईं; किंतु जब कृष्ण बोले कि तुम सब घर को लौट जाओ तो गोपियों को बहुत पीड़ा हुई। गोपियाँ कहने लगी कि कान्ह! तुम्हारे योग्य ये शब्दावलियाँ नहीं हैं, तुम इस प्रकार मत कहो। तुम्हारे सौंदर्य और मुरली के नाद में ऐसा आकर्षण है कि हम लोग तो क्या, समस्त त्रिभुवन उसीके वशीभूत हो जाता है। कृष्ण गोपियों के इस सारल्य पर प्रसन्न होकर हँसते हैं और गोपियों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलते हैं। नन्ददास ने यहाँ भी कृष्ण के नारायण स्वरूप के प्रति सतर्कता बरती है। वे तुरन्त इस बात को कह उठते हैं—जदपि आत्माराम रमत भए परम प्रेम बस।

तत्पश्चात् वन-विहार का वर्णन किया गया है। गोपियों के साथ कृष्ण कुंज-कुंज में घूमते फिरते हैं। फिर वे यमुना के किनारे पर जहाँ शीतल मंद-सुगन्ध समीर चल रही है। भ्रमरों का गुंजन अलग मन को मोहित कर रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि वन-विहार के आनन्द को अधिकाधिक बढ़ाने-वाले समस्त सहज और सम्भव उद्दीपनों को कवि ने दिखाया है।

तभी बीच में कामदेव आता है और कृष्ण उसके अंहकार को चूर-चूर करते हैं। गोपियों को अपने ऊपर गर्व हो उठता है। प्रथम अध्याय यहीं समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अध्याय—प्रारम्भ में कवि विरह की आवश्यकता और महत्ता पर प्रकाश डालता है जिस प्रकार अत्यन्त मधुर ही मधुर सामान खाने से कुछ-कुछ अरुचि-सी होने लगती है और बीच में खट्टा, चरपटा अम्ल या तिक्त पदार्थ खाने से उसका स्वाद और भी अधिक बढ़ जाता है उसी प्रकार विरह से प्रेम का आनन्द बढ़ता ही है। विरह आवश्यक है प्रेम के लिए। इस प्रकार भूमिका बाँधकर आगे गोपियों की विरह दशा का वर्णन किया गया है। कृष्ण उनके गर्व को देखकर राधा को साथ ले कहीं अंतर्धान हो गए। इन समस्त प्रसंगों के पीछे छिपे दार्शनिक भाव को हम अन्त में स्पष्ट करेंगे।

गोपियाँ कृष्ण के वियोग-जन्य विरहोत्ताप को सहन नहीं कर सकीं। और उनकी वही दशा हो गई जो सीता के वियोग से दुःखी राम की हो गई थी। वे भी वृन्दावन की लताओं, पुष्पों और वृक्षों से कृष्ण का पता पूछने लगीं। यहाँ गोपियों के हृदय का विस्तार सम्यग् दिखाया गया है। उनके मन में ईर्ष्या इत्यादि के भाव नहीं आए। पूर्व स्मृतियाँ कृष्ण के वियोग को और अधिक असह्य बनाए दे रही हैं। गोपियाँ बड़े ही सरल भाव से कृष्ण को उपालम्भ देने लगीं कि यदि इतनी दारुण पीड़ा ही हमें देनी थी तो फिर तुमने हमें पहले अपनी अनेक लीलाओं के माध्यम से कष्टों से क्यों उबारा। गोपियाँ अपनी सुध-बुध खो बैठीं। विरह की पराकाष्ठा यहीं है।

आगे चलकर उन्हें कृष्ण के चरण-चिह्नों के साथ राधा के चरण-चिह्न भी

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई दिए। उन्हें ईर्ष्या के बजाय राधा के प्रति सहानुभूति ही जगी देखते हैं हम यहाँ। वे राधा की और उसके सौभाग्य की सरहाना करती हैं। अन्यथा सपत्नी डाह होना स्वाभाविक था। राधा को भी वियोग-दुःख अपने अहंकार के कारण ही सहना पड़ा था। इसी प्रकार तलाश करते-करते गोपियाँ यमुना के के किनारे आईं। यहीं उनकी कृष्ण से भेंट हुई।

तृतीय अध्याय—में गोपियों ने कृष्ण से कुछ प्रश्न कहे हैं जिनका उत्तर देते हैं अपनी मुस्कराहट से। तदनन्तर—

चतुर्थ अध्याय—में गोपियाँ कृष्ण को मृदुल उपालम्भ देती हैं और कृष्ण अपने-आपको गोपियों का ऋणी मानते हैं। वे कहते हैं कि मेरी माया जो समस्त विश्व को विमोहित करती रहती है तुम्हारी सौन्दर्य-क्रान्ति और मोहमयी माया उसे भी मोह लेती है।

पंचम अध्याय—के अन्तर्गत गोपियाँ क्रोध और आक्रोशरहित होकर समस्त मलाल को त्याग देती हैं। यह अध्याय भागवत के ३३वें अध्याय पर ही आधारित है परन्तु वर्ण्य-विषय एक होते हुए भी दोनों की वर्णन-शैली में अन्तर है। भागवत में रास के बाद जल-क्रीड़ा दिखाई है, यहाँ भी वही है। भागवत की ही भाँति यहाँ भी राधा का स्पष्ट वर्णन कहीं नहीं मिलता, कहीं-कहीं संकेत-भर ही मिलते हैं। इस अध्याय में गोपियाँ अपना समस्त रोष दोष छोड़कर कृष्ण के साथ रासलीला में व्यस्त हो जाती हैं। रासलीला एक सुन्दर सरस वृक्ष के नीचे आरम्भ होती है और रति-लीला के रूप में परिणत हो जाती है। कृष्ण दो-दो गोपियों के बीच में विराजमान हैं। मुरली मृदंगादि के सुन्दर रव के साथ नृत्य-गान चल रहा है। आलिंगन, चुंबन और रतिक्रिया भी इसी के साथ-साथ होती जाती है। इसी भूमिका में आए रति-विलास का चित्रण नन्ददास ने अत्यन्त सरस, परन्तु चातुरी के साथ किया है। उसमें सूक्ष्मता-भावगम्यता तो मिलती ही है, साथ ही उसकी प्रमुख विशेषता यह रही है कि उन्होंने इस प्रसंग को अश्लीलता के दोष से बचाए रखा है। इस लीला के बाद समस्त समाज यमुना में जल-क्रीड़ा-विहार हेतु जाता है और वहाँ विभिन्न प्रकार से केलियाँ होती हैं। स्नानोपरान्त कृष्ण के आदेश से कल्पवृक्ष दिव्य आभूषणों की वर्षा गोपियों के लिए करता है। निशावसान से पूर्व समस्त गोपियाँ अपने-अपने घर पहुँच जाती हैं और उनके पति उनको अपने पास ही पाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अन्त में रास-रस-महिमा एवं इस पठन, गान एवं श्रव्य से क्या फल मिलता है, इसके वर्णन से साथ ही साथ नन्ददास ने इस प्रार्थना के साथ कि मेरे कंठ में यह लीला रमी रहे ओउम् शांतिः कहकर ग्रंथ की परिसमाप्ति की है।

हम 'नन्ददास की भक्ति' शीर्षक में प्रस्तुत समस्त प्रसंगों के दार्शनिक भाव को स्पष्ट कर चुके हैं। फिर भी इतना पुनः कहेंगे कि कृष्ण ही ब्रह्म हैं। राधा उनकी विधा माया है और गोपियाँ तथा अन्य भक्तगण अविधा माया हैं। समस्त प्रकृति को एक अनुचरी के रूप में चित्रित किया गया है।

भँवरगीत

भ्रमरगीत परम्परा में नन्ददास के भ्रमरगीत के विषय में पर्याप्त लिख चुके हैं। यहाँ हम केवल उसकी भावभूमि को ही स्पष्ट करेंगे। नन्ददास ने अपने भ्रमरगीत का प्रारम्भ एक वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण के साथ किया है। कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव आए तो उन्हें एकांत ही नहीं मिल पाया। काफी देर बाद उचित अवसर पाकर वे गोपियों को कृष्ण का उपदेश सुनाने लगते हैं। गोपियाँ कृष्ण का नाम सुनते ही मूर्च्छना में आ जाती हैं। होश आने पर प्रथम कृष्ण की कुशल पूछतीं हैं फिर उनको कृष्ण का पूर्व रूप स्मरण हो आता है जिसके फलस्वरूप वे मूर्छित हुई थीं। उद्धव ने जल के छींटे देकर उन्हें सजग किया तो कहने लगे कि ज्ञान की आँखों से देखने पर तुम्हें कृष्ण अपने आपसे दूर दिखाई नहीं देंगे। वे निर्गुण ब्रह्म की साधना का उपदेश देने लगे तो गोपियों ने उनके इस ज्ञानोपदेश का खण्डन किया और अपने प्रेम का मंडन।

इसके उपरान्त कर्म, उपासना, ध्यान, धारणा इत्यादि का क्रमशः उद्धव द्वारा प्रतिपादन और गोपियों द्वारा बड़े ही सहज और चातुरीपूर्ण ढंग से खण्डन है। इसी बीच गोपियों को लगा जैसे कृष्ण उनके समक्ष ही खड़े हैं तो वे कृष्ण की संयोगकालीन कतिपय लीलाओं का स्मरण दिलाती हुई उपालम्भ देती हैं। कृष्ण से कहतीं हैं कि अब तुम राजा हो गए हो, कुब्जा जैसी प्रेमिका तुम्हें मिल गई है, अब हमें किसलिए पूछने लगे ! विभिन्न गोपी विभिन्न प्रकार से उपालम्भ देती हैं।

इसी बीच एक भ्रमर वहाँ चला आया और गोपियों के पैरों में लेटने लगा। भ्रमर में उद्धव और कृष्ण की अनुहारी पाकर वे उसीको उपालंभ देने लगीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसे भी विभिन्न गोपियों ने अपने-अपने ढंग से ही उपालंभ दिए हैं। इसे निपट अरसिक मानती हैं गोपियाँ। उपालंभ देते समय गोपियाँ खल, निठुर जैसी कुछ संयत गालियाँ भी दे बैठती हैं। यहाँ वे एक सैद्धांतिक स्तर से उतरकर मनोवैज्ञानिक और मानवीय धरातल पर आ जाती हैं।

गोपियों से उपालंभ सुनते-सुनते और गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम देखकर उद्धव भी अपने-आप पर पड़ते हुए उनके प्रभाव को रोक नहीं पाए और वे भी ज्ञान-ध्यान की बातें छोड़कर उन्हें निश्चय ही हरि-रस की पात्री समझने लगे। गोपियों को धन्य कहते हुए वे अपनी बुद्धि की विषमता पर खीझ प्रकट करते हैं और अपने अब तक के समस्त भ्रम को वृथा समझते हैं। गोपियों से क्षमा-याचना करते हैं और स्वयं ही प्रेम को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हैं। और अभिलाषा प्रकट करते हैं कि मैं तो ब्रज की ही कोई वस्तु बन जाऊँ ताकि गोपियों के चरण मेरे ऊपर आते-जाते पड़ते रहें। साधु-संगति को उत्तम मानते हुए उद्धव कहते हैं—गोपियों के प्रेम-प्रसाद के परिणाम-स्वरूप ही मेरी द्विविधा मिट गई है।

इसके बाद मथुरा लौटकर कृष्ण को उद्धव भली-बुरी सुनाते हुए गोपियों की विरह-दशा का ज्ञान कराते हैं और कहते हैं कि तुम शीघ्र ही वहाँ जाकर उनका कष्ट हरो, और सभी का साथ भले ही छोड़ देना पड़े।

सखा उद्धव के वचन सुनकर कृष्ण के दोनों नेत्र अश्रु-परिप्लुत हो जाते हैं। उनके रोम-रोम में गोपिकाएँ रमण करने लगीं। फिर वे उद्धव को अपनी और गोपियों की अभिन्नता को जल और लहरों के उदारहण से स्पष्ट करते हैं। अपना बिहार का रूप कृष्ण ने उद्धव को दिखाया और फिर उसे छिपा लिया।

अन्त में नन्ददासजी इस लीला को गाकर स्वयं को धन्य मानते हुए ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4 नन्ददास की भक्ति

भक्ति की परिभाषा—मानव मन में उपसाना की भावना सृष्टि के आरंभ से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। उपासना की इसी भावना के कारण भक्ति-भाव की उत्पत्ति मन में होती है। हम सृष्टि के समस्त कार्यों को आप से आप होता हुआ देखकर किसी एक अज्ञात और परोक्ष शक्ति की कल्पना करते हैं। प्रारम्भ में इसके मूल में आश्चर्य का भाव ही रहता है, किंतु यही आश्चर्य धीरे-धीरे प्रेम, विश्वास और श्रद्धा में परिणत हो जाता है जो भक्ति की पुष्टि के लिए आवश्यक होते हैं।

भक्तिसूत्र में श्री नारदजी ने कहा है—"भक्ति: महानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग ही भक्ति है। उन्होंने इसके उदारहण में "व्रज गोपिकादिवत्" लिखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे व्रजवासिनी गोपियों आदि का श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ अनुराग था उनके अनुराग में जो भी तीव्रता थी वैसी जिस किसीके भी हृदय में होगी वही भक्त की श्रेणी में रखा जाएगा और उसकी इस भावना को ही भक्ति कहा जाएगा। नन्ददास के मन में भी श्रीकृष्ण के प्रति उतनी ही तीव्र अनुराग की भावना थी।

नन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे। इसी कारण से उनकी भक्ति में भी पुष्टिमार्गीय दर्शन का समावेश है। आगे हम पहले प्रेम और भक्ति में थोड़ा-सा भेद स्पष्ट करते हुए इन्हीं समस्त बातों पर विचार करेंगे।

भक्ति और प्रेम—प्रेम के लिए जिन पर्याय शब्दों का प्रयोग होता है वे हैं—प्रीति, स्नेह, अनुराग और प्रणय। इन सभी में थोड़ा-बहुत अन्तर है। यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो लौकिक और अलौकिक का भेद अविद्याजन्य माना जाएगा। प्रीति का सम्बन्ध शृंगार रस से है जिसका स्थायी भाव रति है। प्रेम के दो पक्ष है—लौकिक और अलौकिक। प्रेम अत्यन्त शुद्ध, पवित्र, आनन्द रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से परिपूर्ण नित्य एक रूप और सात्विक है। ईश्वर का भी यही रूप है। और लिखा है कि वे प्रेम से ही प्रकट होते हैं—

"प्रेम ते प्रकट होंहि भगवाना"

—तुलसीदास

प्रीति प्रेम से थोड़ा-सा कम महत्व रखती है। अनुराग के कारण भक्त सगुण भगवान से मिल पाता है—

'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा'

भक्ति-काव्यों में यद्यपि इन सभी का यथास्थान उल्लेख किया गया है किंतु प्राधान्य दिया गया है प्रेम, अनुराग और प्रीति को। किन्तु एक बात ध्यान देने की है कि इनके प्रयोग में इनके निश्चित अर्थों की ओर विशेष ध्यान रखा गया है।

भक्ति के क्षेत्र में जो प्रेम आता है वह प्रेमात्मक सूफी काव्यों के प्रेम-भाव से भिन्न है। भक्तिगत प्रेम शुद्ध, निर्विकार श्रद्धा समादरभाव से परिपूर्ण, और सात्विक होता है। इसमें भाव ही प्रबल रहता है; किन्तु सूफी काव्यों में प्रेम या रति का भाव लौकिक से प्रारम्भ होकर आगे कुछ अलौकिकता का भाव धारण कर लेता है।

भक्ति में समन्वय रहता है अनुराग और विराग का। भक्ति निष्काम होती है और इसमें मानवीय भाव अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही प्रकार से प्रस्फुटित होते हैं। भक्ति का क्षेत्र इसलिए अधिक गूढ़ और गम्भीर होता है कि इसमें ईश्वर-ध्यान और प्रभु का भय प्रधान होकर अनवरत चिन्ता उत्पन्न करता रहता है।

नन्ददास की भक्ति—नन्ददासजी ने प्रेमा-भक्ति को विशेषता दी है। इसके मूल में भक्ति तो है ही, किन्तु यह सिंचित की गई है प्रेम-भाव से। इसीलिए इसे 'प्रेम-भक्ति' के नाम से भी अभिहित किया गया है। सूरदासजी की भाँति नन्ददासजी ने वात्सल्य भाव को नहीं अपनाया है। इसीलिए कृष्णकाल के केवल उन्हीं प्रसंगों को लिया है जिनमें प्रेम-भक्ति की ही प्रचुरता रहती है। उनकी 'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' दोनों ही रचनाओं में इसी भक्ति का रूप निखरकर सामने आया है। हाँ, एक बात ध्यान देने की है कि अभी इस भक्ति में रति भाव के लौकिक और अलौकिक दोनों ही रूप समन्वित होकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समक्ष आए हैं। इनके समन्वय में नन्ददास ने बड़ी ही चातुरी का परिचय दिया है।

कृष्ण-काव्य में भगवद् प्रीति के दो रूप साथ ही साथ चलते हैं। किन्तु ये दोनों रूप परस्पर इतने मिले हुए हैं कि प्रकट होते हुए भी अप्रकट की-सी स्थिति में हैं। हरिलीला को 'दुर्ललितादभुत' कहा गया है। कृष्ण-काव्य-रचयिताओं ने इसका पूरा-पूरा निर्वाह अपने-अपने काव्य-ग्रंथों में किया है। अद्भुत इसलिए कहा गया है कि यद्यपि वह लीला देखने से पूर्णरूपेण ऐहिक विषय-प्रधान दिखाई देती है किन्तु वस्तुतः वह निर्विकार है। इसीलिए हरि-भक्तों को भगवान की लीला भी पवित्रता के प्रति संदेह नहीं होता।

नन्ददासजी ने विशेषतः रास-वर्णन में इस भाव को स्पष्ट किया है। रास-लीला में दिव्य और अदिव्य का समन्वय दिखाया गया है।

भक्तिसूत्र की भक्ति की परिभाषा के आधार पर गोपी या राधा भाव ही प्रेम भक्ति है जो साधारण मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। गोपियों का प्रेम अलौकिक, असामान्य और अतुलनीय था। बालक भगवान श्रीकृष्ण में उनका कैसा सत्य, शुद्ध प्रेम था यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

हम पहले ही कह आए हैं कि नन्ददासजी वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुयायी थे। उसके अनुसार भगवान अपनी लीला शक्ति से दिव्य अवतार धारण कर अमलात्मा जीवों के लिए भक्ति-योग का विधान करते हैं। और वे "आनन्दैकरसमूर्तयः" भक्त सौन्दर्य-माधुर्य-सुधामयी मूर्ति के प्रति ऐसे आकृष्ट हो जाते हैं कि उन्हें भगवद्दर्शन के आगे सांसारिक सुख तो क्या मुक्ति, कैवल्य और अपुनर्जन्म इत्यादि सभी हेय लगते हैं। भक्त को भगवान का विशुद्ध प्रेम ही अपेक्षित रहता है। गोपियों ने 'भ्रमरगीत' में उद्धव के ज्ञान का जो खण्डन किया है वहाँ इसी बात को द्योतित किया है। एक स्थल पर कुछ उदारहण देखिए—

कर्म-धूरि की बात कर्म-अधिकारी जानैं।
कर्म-धूरि कौं आनि प्रेम अन्त मैं सानैं॥
तन ही लौं सब कर्म हैं, जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्म-बंध सब विस्व के जीव विमुख ह्वै जाँहि॥

× × ×

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमरें तो इहि रूप बिनु और न कुछ सुहाय ।
जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय ।। इत्यादि ।

नन्ददास की भक्ति का मूल पूर्ण समर्पण की भावना ही रही है । वे प्रेम को अमृत मानते हैं ।

एक बात और है कि पुष्टिमार्गीय प्रेम-भक्ति में भगवान का अनुग्रह मूल और सर्वोपरि माना गया है । यदि भगवान का अनुग्रह नहीं है तो भक्ति-भावना का उद्रेक ही असम्भव है—

कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टिः

केवल भक्त की ओर से चेष्टा करने से ही सब कुछ नहीं हो जाता । इष्टदेव की कृपा भी तो अवश्य रूपेण चाहिए । नन्ददास इसी कृपा के आकांक्षी हैं । इसी कृपा को 'पुष्टि' कहा गया है क्योंकि इसीसे भक्तों का पोषण होता है। 'पोषणं तत् अनुग्रहः' । सत्य बात तो यह है कि इस कृपा के बिना हृदय में भक्ति अंकित नहीं होती ।

इसके कई साधन हैं जिनमें से प्रथम है संकीर्तन । कहा भी गया है—"कलौ केशव कीर्तनात्" । इस साधन के अतिरिक्त हरि-भक्ति के अन्य साधन निम्न प्रकार से हैं—

१. लीला-गान
२. नित्य और नैमित्तिक कर्म और—
३. भगवान के रूप का ध्यान

'रासपंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' की गोपियों में लीलागान और रूप का ध्यान मिलता है । भगवान के रूप-ध्यान के अभाववश विरह का दारुण दुःख उन्हें सहना पड़ता है । प्रेम-भक्ति में इस विरह को भी आवश्यक माना जाता है । रासपंचाध्यायी के द्वितीय अध्याय में नन्ददास जी लिखते हैं—

मधुर वस्तु ज्यौं खात निरंतर सुख तौ भारी ।
बीचि बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिय रुचिकारी ।।
ज्यौं पटु पट के दिए निपट ही रसहि परैं रंग ।
तैसेहि रंचक विरह प्रेम के पुंज बढ़त अँग ।।
जिनके नैन निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं ।
तिनके गृह वन कुंज ओट दुःख अनगिनत आहीं ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु प्रियतम के ध्यान से यह विरह का दारुण दुःख समाप्त हो जाता हैं।—

परम दुसह श्रीकृष्ण विरह दुःख व्याप्यो तिन मैं।
कोटि बरसि लग नरक भोग श्रध भुगते छिन मैं॥

परन्तु,

जिय प्रिय की धरि ध्यानि तनिक श्रालिगन किय जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छीन कीने मंगल सब॥

भगवान के प्रति भक्ति में जो रति होती है उसके पाँच रूप माने गये हैं—शान्त, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा और कान्ता या मधुरा। इनमें शांत भक्ति का रूप शांत, प्रीति का दास्य, प्रेम का सख्य, अनुकम्पा का वात्सल्य और कांता या मधुरा का मधु या शृंगार है।

शांतभक्ति—में वैराग्य का प्रामुख्य होता है; किन्तु यह वैराग्य संसार के प्रति ही होता है आराध्य इष्टदेव के प्रति नहीं। गोपियों ने लोक-लाज, कुल-कानि किसी की भी चिंता नहीं की और कृष्ण के साथ रास-क्रीड़ा हेतु वृन्दा-विपिन में पहुँचीं—

श्रहो तिया कहा जानि भवन तजि कानन डगरीं।
श्रर्ध गई सर्वरी कछुक डर डरीं न सगरी॥

लेकिन कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर देने के बजाय गोपियों के मन डूबने लगे फिर साहस करके उन्होंने कहा कि हम इस मुरली के वशीभूत होकर आई हैं—

त्यौं ही प्रिय की मुरली जुरली श्रधर सुधा रस।
सुनि निजु धरम न तजै तरुनि त्रिभुवन मांहि को श्रस॥

लीला-गान—पुष्टिमार्ग में भगवत् लीला का महत्वपूर्ण स्थान है। सही बात तो यह है कि वल्लभाचार्यजी को दैन्य-प्रधान भक्ति प्रिय ही नहीं थी। उनकी भक्ति में लीला, कीर्तन आदि का प्रमुख स्थान था। नन्ददासजी ने इस का विशेष ध्यान रखा और प्रेम-भक्ति के अन्तर्गत अनेकानेक लीलाओं का वर्णन किया। कहीं-कहीं यह लीलाएँ केवल सांकेतिक रूप से ही वर्णित की गई हैं। भ्रमरगीत की गोपियाँ कृष्ण को उपालंभ देते समय इनका सांकेतिक वर्णन करती हैं।

मधुरा भक्ति—इसमें भक्त भगवान के इतना निकट आ जाता है और ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्ध स्थापित कर लेता है जैसे पति-पत्नी का। हम पहले भी लिख चुके हैं कि नन्ददासजी ने गोपियों और कृष्ण को पति-पत्नी के रूप में मानकर उनकी प्रेम लीलाओं के चित्रण से अपनी इस भक्ति को स्पष्टतः उभारकर रखा है। मधुरभाव के भक्तों के लिए इन्द्रियों के नियमन का प्रश्न नहीं उठता। रास-पंचाध्यायी में रति-क्रिया से पूर्ण और रति तथा रत्यन्त की समस्त मनोवैज्ञानिक स्थितियों तथा शारीरिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। आलिंगन, चुंबन कुच-मर्दन, रति इत्यादि सभी कुछ उसमें हैं।

नन्ददास की भक्ति का दार्शनिक पक्ष—हम पहले ही लिख चुके हैं कि नन्ददासजी की भक्ति गोपियों के माध्मय से प्रस्फुटित हुई है। रास-क्रीड़ा में उन्होंने अपने भक्ति और दर्शन सिद्धांत को उभार दिया है। वस्तुतः रास-क्रीड़ा माया तथा हरि या प्रकृति और पुरुष का वर्णन है। केन्द्र में माया-पुरुष और चारों ओर फिर माया-पुरुष का नर्तन होता है—

अरंभित अद्भुत सुरास ,उहि कमल चक्र पर।
नमित न कितहूं होहि सबै निरतत विचित्र वर॥

× × ×

एक काल ब्रज बाल लाल तँह चढ़े जोरि कर।
तिनसन इत उत होत सबैं निर्तंत विचित्र बर॥
मनि-दर्पन सम अवनि रमनि तापर छबि देंहीं।
बिलुलित कुंडल अलक-तिलक झुकि झाँई लेहीं॥
कमल किनिका मध्य जु स्माया-स्याम बनीं छबि।
द्वै द्वै गोपिन बीच जु मोहन लाल रहे फबि॥
मूरति एक अनेक देखि अदभुत सोभा अस।
मंजु मुकुट-मंडल मधि बहु प्रतिबिंब बधू जस॥

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि केन्द्र में माया-पुरुष रूप में राधा-कृष्ण थे और उनके चारों ओर फिर माया-पुरुष ही थे। इस बात को विज्ञान भी स्वीकार करता है कि एक अणु के चारों ओर दूसरा अणु वेग से घूमता है और इसीसे सृष्टि की समस्त उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कार्य चलता रहता है। और समस्त सृष्टि हरिरूप में केन्द्रित होकर केन्द्रीभूत हो नर्तन-सा करती रहती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति के क्षेत्र में माया के भी दो रूप स्वीकार किए गए हैं। पहली है विद्या-माया और दूसरी है अविद्या-माया। राधा ही यहाँ विद्या-माया है इसी को हरि की आल्हादिनी शक्ति भी कहा गया है। अविद्या-माया के अनेक रूप माने गए हैं इसी से राधा के अतिरिक्त अन्य समस्त गोपियाँ अविद्या-माया हैं और इनके अतिरिक्त अन्य समस्त कलाएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं।

नन्ददास जी ने इस रास-नृत्य में समस्त प्रकृति को लीन दिखाया है, जैसे वह अनुचरी का कार्य कर रही हो। लीला की दिव्यता इसी बात से द्योतित होती है कि रास-लीला के अन्त में जल-क्रीड़ा के व्याज से हरि ने इन समस्त आत्माओं को रस से शुद्ध किया फिर अलंकृत वस्त्राभरण उनकी आज्ञा से कल्प-वृक्ष ने उन्हें प्रदान किए।

साधना में अहंकार को कोई स्थान नहीं होता। अहंकार होने पर साधना भंग होती है और एक निश्चत प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप के वाद हरि-कृपा से पुनः साधना प्रारम्भ होती है और इष्ट की उपलब्धि होती है। गोपियों को भी अहंकार हुआ। इसके लिए उन्हें घोर विरह संताप सहन करना पड़ा। किन्तु जब वे अहंकार-शून्य हो गईं तो पुनः हरि ने आकर उन्हें आनन्दित किया।

मुरली ने महा-दूती का कार्य किया है। क्योंकि गोपियों को कृष्ण के पास यही बुलाती है। और अपने इस कार्य का प्रतिफल उसे यही मिलता है कि प्रथम वह स्वयं कृष्णाधर रसामृत-पान करती है तत्पश्चात् गोपियाँ।

रासलीला का समस्त प्रसंग एक आध्यात्म-विचारधारा को साथ-साथ लेकर चलता है। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददासजी का उद्देश्य भक्ति एवं प्रेम के साथ ही हरि की अध्यात्म-लीला का चित्रण करना भी रहा था।

इसका तात्पर्य यही है कि यह रास-लीला सामान्य रूपेण काम-केलि न होकर आत्माओं के परमात्मा से मिलने के प्रेम-मार्ग का चित्रण है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नन्ददासजी ने प्रेम-भक्ति का सांगोपांग चित्रण किया है और इसमें वे पूर्णतः सफल भी रहे हैं। शृंगारिकता इस प्रसंग में खोजना उचित नहीं होगा इसीलिए 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' लिखकर उन्हें इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता पड़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5 नन्ददास का काव्य सौष्ठव

काव्य के पक्ष—काव्य के दो पक्ष माने गए हैं—भाव-पक्ष और कला-पक्ष। इन्हीं को काव्य का अन्त: और बाह्यपक्ष भी कहा गया है। हम किसी भी काव्य-कृति को पूर्णरूपेण सफल तभी मानने को तैयार होंगे जब उसमें इन दोनों ही पक्षों का सम्बन्ध यथेष्ट रूपेण किया गया हो। हम नन्ददास के काव्य में इन दोनों पक्षों पर विचार करने से पूर्व इन दोनों पक्षों के अन्तर्गतआने वाले समस्त तत्वों की चर्चा करना आवश्यक समझते हैं—

भाव-पक्ष—के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वों पर विचार किया जाता है—

१. रस। २. प्रकृति-वर्णन। ३. सौन्दर्य-चित्रण। ४. सम्बन्ध कथा कहने की क्षमता। ५. चरित्र-चित्रण।

कला-पक्ष—के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्वों पर विचार किया जाता है—

१—भाषा—

(क) शब्द विधान। (ख) मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग। (ग) भाषा की लाक्षणिकता। (घ) भाषा की भावानुकूलता और (ङ) शब्दों का शुद्ध-अशुद्ध प्रयोग।

२—छन्द

३—अलंकार

४—शैली

हम इन्हीं तत्वों के आधार पर आगे नन्ददास के काव्य-सौष्ठव पर विचार करेंगे।

भाव-पक्ष—

(१) रस—भारतीय आचार्यों ने रस को आनन्द-स्वरूप ही माना है। इसी आधार पर काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। काव्य के लिए रस परमावश्यक है। रस नौ प्रकार के होते हैं जिनमें शृङ्गार को प्रमुखता दी गई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। शृंगार के आलंबनों में तथा उसके वर्णन करनेवाले काव्यों में माधुर्य गुण की प्रधानता रहती है। भारतीय आचार्यों ने माधुर्य को ही सौन्दर्य का परिचायक माना है। माधुर्य की परिभाषा देते हुए साहित्यदर्पणकार लिखते हैं—

"चित्त द्रवी भावमयोऽल्हादो माधुर्यमुच्यते"

—साहित्यदर्पण । ८।३

अर्थात् जो गुण चित्त को द्रवीभूत करके आह्लादमय बनाता है उसे माधुर्य कहते हैं। सौन्दर्य में भी चित्त को द्रवीभूत करने का गुण होता है।

शृंगार रस में भी सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल उसके आलंबन विभाव से होने के कारण सौन्दर्य कला का वाह्यपक्ष सिद्ध होता है। वैसे प्रत्येक कला का संबंध रस से होता है और जो बात कला के लिए कही जा सकती है वही बात व्यापक सौन्दर्य के लिए भी कही जा सकती है जिसमें प्राकृतिक और मानसिक सौन्दर्य भी आ जाते हैं। इतना होने पर भी रस ही कला की आत्मा सिद्ध होता है।

नन्ददासजी की समस्त रचनाओं में शृंगार रस का ही प्राधान्य मिलता है—यदि हम यह कहें कि नन्ददासजी ने शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य किसी रस को वर्णित ही नहीं किया और यदि किया भी तो नहीं के बराबर तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

शृंगार के दो पक्ष माने गए हैं—संयोग और वियोग। 'रासपंचाध्यायी' को ही लीजिए जो उनकी प्रमुख काव्य-कृति है। इसमें शृंगार की उद्दीप्ति मुरली के नाद से होती है। शृंगार को उद्दीप्त करने के लिए नन्ददासजी ने चाँदनी और वृन्दावन का जो भव्य वर्णन किया है वह देखते ही बनता है। संयोग शृंगारान्तर्गत आलिंगन, चुम्बन, कुच-मर्दन, रति, रतिश्रम के कारण आनेवाली थकान इत्यादि का वर्णन किया गया है। हास-परिहास का भी यत्र-तत्र समावेश है। कुछ उदाहरण देखिए—

छिरकति छैली छैल जमुन जल अंजलिं भरि-भरि।
अरुन कमल मंडली फाग खेलति रस रँग करि।

× × ×

जमुना जल में दुरि-दुरि कामिनि करति कलोलैं।
मानो नवघन मध्य दामिनी दमकति डोलैं।

—जलक्रीड़ा चित्रण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहरति रति अविरुद्ध बुद्ध जु सुरत रस सागर ।
उज्ज्वल प्रेम उजागर नागर सब गुन आगर ॥
हार-हार में उरझि-उरझि बहियों में बहियाँ ।
नील पीत-पट उरझि-उरझि बेसर नथ महियाँ ॥
स्रम भरि सुन्दर अंग-अंग अति मिलत ललित गति ।
अंगन पर भुज दिए लटक सोभा से नित अति ॥
टूटी मुक्तिनि माल छूटि रही साँवर उर पर ।
गिरितें जिनि सुरसरी गिरी हूँ धारि-धारि धर ॥

—रतिक्रीड़ा-चित्रण

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नन्ददास शृंगार के संयोग पक्ष के चित्रण में सफल रहे हैं। उनके शृंगार के आलम्वन हैं कृष्ण और आश्रय हैं गोपियाँ।

वियोग-पक्ष—संयोग की अपेक्षा वियोग की अधिक महत्ता है। संयोग में प्रेमी जहाँ प्रिय के ऊपर अपना एकाधिकार चाहने लगता है वहाँ वह वियोग में प्रेमी के व्यक्तित्व का विस्तार चाहने लगता है। संयोग में हमें एकान्त-प्रियता रहती है किन्तु वियोग में हम अपना दुःख प्रकृति में भी बाँटकर देखने लगते हैं। वियोग हमारे प्रेम के लिए इसलिए भी आवश्यक रहता है कि इसमें हमारे हृदय का विस्तार हो जाता है, संयोग में संकुचन। हम समस्त प्रकृति को अपने समान दुःख में ही लीला देखने के आदी हो जाते हैं। इसीलिए पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने अपने खण्ड-काव्य 'पथिक' में लिखा है—

विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुसुप्त मिलन है।
मिलन अन्त है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है।

और नन्ददास जी पुष्टिमार्गीय अन्य भक्त-कवियों की ही भाँति विरह को आवश्यक मानते हुए लिखते हैं—

मधुर वस्तु ज्यों खात निरन्तर सुख तौ भारी ।
बीच-बीच कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी ॥
ज्यों पटु पट के दिए निपट ही रसहिं परै रँग ।
तैसेहि रंचक विरह प्रेम के पुंज बढ़त अंग ॥
जिनके नैन निकोष ओट कोटिक गुण जाहीं ।
तिनके गृहवन कुंज ओट दुःख अगनित आहीं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्ददासजी ने क्योंकि प्रमुखतः अपने काव्य-ग्रन्थों में शृंगार रस को ही चित्रित किया है अतः उसके वियोग-पक्ष क ्‌ष्ट रूप से चित्रित किया है। वियोग ४ प्रकार का माना जाता है—

१. मान २. परदेश-गमन के कारण, ३. किसी शाप या अभिशाप के कारण। ४. करुण विप्रलभ।

नन्ददासजी ने थोड़ा-बहुत यों तो सभी का चित्रण किया है फिर भी उनमें मान और परदेश-गमन का ही वियोग अधिक है। रासपंचाध्यायी की गोपियों को वियोग दो कारणों से सहना पड़ा है। कुछ गोपियों को तो अपनी कुल-कानि-लज्जा के कारण रास से पूर्व और कुछ को वन-प्रान्तर में पहुँचने पर भी श्रीकृष्ण को न प्राप्त कर सकने के कारण। राधा को अपने गर्व के कारण सहना पड़ा है। भ्रमरगीत की गोपियों का वियोग पति के परदेश-गमन के कारण है। कृष्ण मथुरा चले गए और फिर लौटे ही नहीं। गोपियों को उपदेश देने के लिए उद्धव को भेजा श्रीकृष्ण ने। उद्धव का परिचय पाते ही पूर्वस्मृतियाँ गोपियों के प्रेमानुरंजित कोमल हृत्पटल पर उभरने लगीं और उन्हें कृष्ण का वियोग सालने लगा जो तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम हो गया। रूपमंजरी का विरह प्रथम दर्शन के कारण है।

वियोग में जिन-जिन परिस्थितियों की अपेक्षाएँ और सम्भावनाएँ हो सकती हैं उन सभी का उपयोग नन्ददासजी ने किया है।

उद्दीपन—वियोग में हमारी मानसिक स्थिति विक्षिप्त हो जाती है। प्रियतम के सम्पर्क की समस्त वस्तुओं में हमें प्रियतम के ही दर्शन, होने लगते हैं। यों कहिए समस्त प्रकृति प्रियतममय ही लगती है। गोपियों के साथ भी यही बात हुई है। रासपंचाध्यायी की गोपियाँ प्रकृति की एक-एक वस्तु से प्रियतम का पता पूछती हैं जैसे वे सब कुछ जानती हों—

हे मालति ! हे जाति जूथिके ! सुनियत दै चित।
मानहरन, मन-हरन गिरिधरन लाल लखे इत॥
ए चन्दन दुःख कंदन सब कहुँ जरत सिरावहु।
नन्द-नन्दन जग-वन्दन चन्दन हमहिं मिलावहु॥
अहो कदम्ब अम्ब निंब क्यों रहे मौन गहि।
अहो बट ! तुंग सुरंग वीर कहुँ इत उलटे लहि॥

[illegible]ग्रन्थालय,
[illegible]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस परिस्थिति में गोपियों की ही भाँति हर वियोगी की आवाज में माधुर्य और स्नेह का भाव घुल जाता है। यहाँ 'वीर' शब्द का प्रयोग ऐसा ही है।

प्रियतम का पता न लगने पर खीझ होती है और वे ही वस्तुएँ हमें काटने दौड़ने लगती हैं जो कभी प्रिय थीं और संयोग में प्रेमानन्द-रस को बढ़ाती थीं। रूपमंजरी में नन्ददासजी ने विरह का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। नायिका के विरह-ताप का अनुमान कीजिए—

भूख पियास सबै मिटि गई। खाम कछु गुरुजन की लई॥
उमक दै नैन नीर भरि आवहिं। पुनि सुखि महा छवि पावहिं॥
पुलक अंग स्वर भंग जनावै। बीच-बीच मुरझाई आवै॥

ताप इतना बढ़ गया है कि किसी के पास बैठकर श्वाँस इसलिए नहीं लेती थी कि उसकी गर्मी का ज्ञान होने से कोई यदि पूछ बैठे तो वह क्या उत्तर देगी। यदि कोई उसे कमल का फूल लाकर देने लगता तो वह इस डर से कि उसकी गर्मी से झुलस न जाए, हाथ में नहीं लेती थी बल्कि उसे अपने पास रखवा लेती थी।

इसी ग्रंथ में उन्होंने बारहमासा पद्धति का उपयोग भी वियोगोद्दीपनार्थ किया है। बीच-बीच में सहेली के द्वारा आशापरक सांत्वना देना, प्रश्नोत्तर, होली के अवसर पर कृष्ण-लीला का गान सुनकर मूर्छित हो जाना इत्यादि का अत्यन्त रसमय वर्णन हमें यहाँ मिलता है।

उपालंभ—विरह में हम सम्बन्धित-असम्बन्धित सभी को उपालंभ देने लगते हैं। 'भ्रमरगीत' में तो उपालंभ ही हैं। पहले श्रीकृष्ण को और फिर भ्रमर को। रासपंचाध्यायी में भी एकाध स्थल पर प्रकृति की कुछ वस्तुओं को उपालंभ इसलिए दिए गए हैं कि वे किसलिए बताने लगे ये तो स्वयं उनके प्रति अनुरक्त हैं। नन्ददास की गोपियों की विरह में कुछ ऐसी दशा बनती है कि वे अपना द्वेषभाव भूल जाती हैं। कृष्ण जब अकेली राधा को लेकर रमणार्थ चले गए तो गोपियों को उससे ईर्ष्या नहीं हुई वरन् उन्होंने उसके सौभाग्य को सराहा और जब आगे चलकर राधा को भी वियोग-व्यथित स्थिति में 'क्वासि-क्वासि' कहकर मोहन को पुकारते देखा तो उसकी दशा पर अन्य सपत्नियों की भाँति हँसी नहीं वरन् उसे अपने गले से लगाकर स्वयं भी जोर-जोर से रोने लगीं और कभी सांत्वना देने लगीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका एक कारण विशेष है। नन्ददासजी ने इस समस्त प्रसंग के पीछे एक आध्यात्मिक भावना को जोड़कर रखा है। उन्होंने इनके माध्यम से प्रेम-भक्ति-पद्धति का विवेचन किया है।

'भँवरगीत' की गोपियों के कुछ उपालंभ देखिए—

कोउ कहै अहो दरस देत पुनि लेत दुराई।
यह छल विद्या कहो कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम परवस आधीन हैं तातैं बोलति दीन।
जल बिनु कहि कैसैं जियैं पराधीन जे मीन॥
बिचारी रावरे।

× × ×

कोउ कहै अहो कान्ह कहा इतराय गए हो।
मथुरा को अधिकार पाइ महाराज भए हो॥
ऐसे कछु प्रभुता अहो जानत कोऊ नाहिं।
अबला बुधि सुनि डरि गईं बली डरै जगमाहिं॥
पराक्रम जानि कैं—इत्यादि।

वियोग की दसों दशाओं का चित्रण हमें मिलता है। स्थानाभाव के कारण कुछ उदाहरण देखिए—

अभिलाषा— अहो नाथ अहो रसनाथ जदुनाथ गुसाईं।
नन्द-नन्दन बिडराति फिरति तुम बिनु बन गाईं॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै जो ग्वालनि सुधि लेहु।
दुःख जल निधि हम बूड़हीं कर अवलंबन देहु॥
निठुर ह्वै कहँ रहे।

स्मरण— सुनत श्याम को नाम बाम गृह की सुधि भूलीं।
भरि आनन्द रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूलीं॥
पुलकि रोम सब अंग भए भरि आए जल नैन।
दुःखजलनिधि हम बूड़हीं बोले जात न बैन॥
व्यवस्था प्रेम की।

मूर्छा— विह्वल ह्वै धरनी परीं व्रज वनिता मुरझाइ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रलाप— 'क्वासि-क्वासि' पिय महावहु यों वदति अकेली।
महा विरह की धुनि सुनि रोवत सद्रुम बेली।।

गुणकथन— कहन लगीं अहो कुँअर कान्ह ब्रज प्रगटे जब तैं।
अवधि भूति इन्द्रादि इहाँ क्रीड़त हैं तब तैं।।

इसी प्रकार शेष अवस्थाओं के भी चित्रण मिलते हैं।

प्रकृति-चित्रण—भारतवर्ष प्राकृतिक सौन्दर्य का अक्षय भंडार है। यहाँ के वन, पर्वत, नदी, नद, पशु-पक्षी, ऋतुएँ आदि सभी प्रकृति की अनन्त रमणीयता की झाँकी उपस्थित करते हैं। इसी अनन्त रमणीय प्रकृति की सौन्दर्यशालिनी गोद में भारतीय काव्यधारा ने जन्म लिया और केलियाँ की हैं। यही कारण है कि भारतीय कविता में प्रारम्भ से ही प्रकृति अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है। परन्तु हिन्दी कविता के आरम्भिक कालों में प्रकृति-चित्रण के प्रति कुछ उदासीनता ही अधिक रही। वहाँ प्रकृति के स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त चित्रों की अपेक्षा उद्दीपन रूप की ही चर्चा अधिक मिलती है। क्योंकि अधिकांश स्थलों पर प्रकृति का प्रयोग वियोग-वर्णन में हुआ है और वहाँ पर प्रकृति नायिका या नायक को संतप्त, व्यथित एवं उत्तेजित करती हुई दिखलाई गई है। इधर आधुनिक युग में आकर प्रकृति-चित्रण की प्रणाली में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। इसमें सजीवता, चेतनता, मार्मिकता आदि के दर्शन करके कवियों ने प्राकृतिक जगत् के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों का अत्यन्त विशद एवं विस्तृत वर्णन किया है। आजकल तक प्रकृति-चित्रण की प्रमुखतः नौ प्रणालियाँ प्रचलित हुई हैं—

१. आलंबन रूप में। २. उद्दीपन रूप में। ३. संवेदनात्मक रूप में। ४. वातावरण निर्माण के रूप में। ५. रहस्यात्मक रूप में। ६. प्रतीकात्मक रूप में। ७. अलंकार रूप में। ८. लोक-शिक्षा के रूप में या उपदेशात्मकता के रूप में। ९. दूती रूप में।

आलंबन रूप में प्रकृति-चित्रण करन की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं—

१. बिम्ब ग्रहण प्रणाली। २. नाम परिगणन प्रणाली।

इसमें पहले के द्वारा प्रकृति का एक ऐसा संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाता है जिसमें कवि कल्पना का पूरा-पूरा प्रयोग करता हुआ अपनी अनुभूति की व्यापकता के कारण प्रकृति के रम्य एवं भयानक रूप की झाँकी दिखाता है किन्तु दूसरी प्रणाली के अनुसार प्रकृति के वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि के केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र ही गिना दिए जाते हैं और कोई सामूहिक प्रभाव उपस्थित करने का प्रयास नहीं किया जाता।

नन्ददासजी के विषय में यह बात हर स्थल पर ध्यान रखनी पड़ेगी कि वे केवल कवि नहीं थे, भक्त-कवि थे। समस्त भक्ति-काव्य में प्रकृति-चित्रण दो प्रमुख विचारों या सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है। प्रथम आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार से और दूसरा औपासनिक विचार से।

दार्शनिक विचारधारा से प्रकृति-चित्रण करते समय प्रकृति को माया माना गया है। इसके दो रूप हैं। जड़ और चेतन, दार्शनिक शब्दावली होगी—विद्या और अविद्या। ईश्वर मायापति है फिर भी वस्तुतः वह इससे परे है। माया उसीकी इच्छानुसार नृत्य करनेवाली अर्थात् दासी है। वह प्रत्येक कार्य ऐसा करती है जिससे परमात्मा प्रसन्न हो। इसी विचार के साथ भक्ति-काव्य में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में रखा गया हैं। भक्त-कवियों ने ऐसे स्थलों पर भी प्रकृति की दिव्यता को ही अधिक महत्व दिया है। यहाँ मूलभूत नियम अवश्य बने रहते हैं—अपना आभास भी—देते हैं; फिर भी वे सामान्य से हटकर कुछ अलौकिक ढंग के कार्य-कलाप करते हैं।

आलंबन रूप में—नन्ददासजी ने रासपंचाध्यायी में प्रथम ही वृन्दावन का वर्णन प्रस्तुत किया है; किन्तु यह वर्णन दिव्यत्व से हट नहीं पाया है। दिव्यता इसके साथ ही साथ कवि ने ध्यान में रखी है। इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि वह मूलतः एक भक्त था। वृन्दावन के वृक्षों, लताओं और धरती इत्यादि का अत्यंत दिव्य वर्णन भव्य नहीं कहा जा सकता।

(क) बिम्ब ग्रहण— ता पर षोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति।
तहँ इक मन्मिमय अंक चित्र को संग सुभग अति॥

(ख) नाम परिगणन—पत्र मूल फल-फूल सकल हीरा-मनि मोती।
तिन मधि तिनके गंध लुब्ध अस गान करत अलि॥

आलवंन रूप में प्रकृति-चित्रण मिलता है लेकिन इसे हम रमणीय नहीं कह सकते। नाम-परिगणन मात्र ही अधिक है।

उद्दीपन रूप में—प्रकृति-चित्रण नन्ददासजी ने विरह या संयोग को उद्दीप्त करने के लिए किया है। ऐसे स्थल पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

संवेदनात्मक रूप में—इस दृष्टि से नन्ददास का प्रकृति-चित्रण मार्मिक

आम्नाय-ग्रन्थालय,
वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन पड़ा है। रासपंचाध्यायी में राधा की विरह व्याकुलता को देखकर खग-मृगादि रो उठे हैं। इसीसे यह द्योतित होता है कि प्रकृति चेतन और भावना-मयी है। उसमें संवेदना और साहनुभूति की भावनाएँ हैं—

'क्वासि क्वासि' पिय महाबाहु यों वदति अकेली।
मंहा विरह की धुनि सुनि रोवत खग, मृग बेली॥

वातावरण निर्माण के रूप में—शरद रजनी का वर्णन लिया जा सकता है। रास-क्रीड़ा के लिए शरद रजनी की मादकता और मोहकता अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

रहस्यात्मक रूप में—वर्णन नहीं मिलता। उसका एक मात्र कारण है कि नन्ददास के समय तक इस रूप में प्रकृति का चित्रण किया ही नहीं गया था। यह प्रकृति छायावादी कवियों की देन है।

प्रतीकात्मक रूप में—इस प्रणाली द्वारा ऐसे अप्रस्तुतों अथवा उपमानों को अंकित किया जाता है जो वाह्य साम्य की अपेक्षा आन्तरिक साम्य को लेकर उपस्थित होते हैं तथा अपने प्रभाव साम्य के कारण किसी घटना या वस्तु के उपलक्षण या प्रतीक बन जाते हैं। प्राचीन काल की कविता में इस प्रकार के प्रतीक नहीं मिलते। इनकी आधुनिक कविता में भरमार है। जैसे—सुख, आनन्द प्रफुल्लता यौवनादि के लिए उनके द्योतक क्रमशः उषा, प्रभात्त, मधुकाल इत्यादि। नन्ददास इत्यादि कतिपय भक्त-कवियों में से जिन्होंने भ्रमरगीत परम्परा में कुछ लिखा है उन्होंने बस इतनी ही प्रतीक लिया कि भ्रमर को उसकी वृत्ति और रंग साम्य के कारण श्रीकृष्ण का प्रतीक मान लिया है। अन्यत्र ऐसे प्रकृति-चित्रण उपलब्ध नहीं होते।

अलंकार रूप में—नन्ददास ने इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण पर्याप्त किया है। प्रायः कविगण गुण, भाव एवं आकृति का साम्य प्रदर्शित करने के लिए ऐसे प्रकृति-चित्रण का उपयोग करते हैं। ऐसे स्थलों पर कवि-गण प्रकृति से ऐसे-ऐसे उपमान चुना करते हैं जिनसे उनके पात्रों के अंगों एवं प्रवृत्तियों का सम्यक् स्वरूप उनके पाठकों के समक्ष आ सके। वृन्दावन-वर्णन, श्रीकृष्ण या शुकदेव के सौन्दर्य-वर्णन में नन्ददास का यह कौशल देखते ही बन पड़ा है। कहीं-कहीं तो नन्ददासजी ने भागवत के ही उपमानों को अनुवाद के रूप में रख दिया है। परन्तु कहीं-कहीं ये स्वतंत्र मौलिक उद्भावनाएँ अच्छी कारगर हैं। इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयोग उनके उत्प्रेक्षाओं, रुपकों, उपमाओं इत्यादि में मिलता है—

कोउ नगधर वर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नवघन तें सटकि दामिनी छटासु अटकी।।
× × ×
धाय जमुन जल धँसे लसे छवि परति न बरनी।
विहरत मनु गजराज संग लिये तरुनी करनी।।
मंजुल अंजुलि भरि-भरि पिय कौं तिय जल मेलत।
जनु अलिसौं अरविदवृन्द मकरन्दनि खेलत।।

लोकशिक्षा के रूप में—इस प्रणाली के द्वारा प्रकृति के ऐसे-ऐसे रहस्य कवि-गण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं जिनसे सर्वसाधारण को अनेक शिक्षाप्रद बातें प्राप्त हो जातीं हैं और उनके आधार पर सांसारिक स्थिति का ज्ञान भी सुगमता से हो जाता है। नन्ददास में इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण भी नहीं मिलता।

दूतीरूप में—इस रूप में भी प्रकृति-चित्रण नन्ददास ने नहीं किया। अन्त में हम कह सकते हैं कि नन्ददासजी का प्रकृति-चित्रण परम्परानुसार ही रहा है। उसमें नवीनता नहीं है। यों वह सुन्दर तो बन पड़ा है, परन्तु विशेष प्रभावोत्पादक नहीं।

सौन्दर्य-चित्रण में—किसी नायक या नायिका का आन्तरिक और बाह्य-चित्रण किया जाता है। बाह्य से तात्पर्य है शारीरिक सौन्दर्य का और आन्तरिक से तात्पर्य है हृदगत भावनाओं और प्रवृत्तियों का चित्रण। नन्ददासजी ने गोपियों की हृद्गत भावनाओं का चित्रण एकाध स्थल पर ही किया है जहाँ वे स्वयं कृष्ण की कठोरता की तुलना में अपने प्रेम की उत्कृष्टता को रखती हैं कि हम तो घरबार छोड़कर तुम्हारे लिए यहाँ चली आईं किन्तु तुम बहुत निष्ठुर हो। हाँ, आंगिक सौन्दर्य-चित्रण में यद्यपि कुछ नवीनता तो नन्ददासजी नहीं ला पाए फिर भी उन्होंने इस प्रकार का चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया है। रासपंचाध्यायी के प्रारम्भ में शुकदेव और यत्र-तत्र श्रीकृष्ण तथा गोपियों का चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। कुछ उदारहण देखिए—

उर-उर पर अति छवि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहिं अन्तर जगमगत निरन्तर कुँअर कन्हाई।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी ॥
हिय-सरवर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी ॥
ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी ।
त्रिवली ता मँह ललित भाँति मनु उपजति लहरी ॥

सौन्दर्य-चित्रण में बहुधा उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का सहारा लिया गया है।

सम्बन्ध कथा कहने की क्षमता—श्याम-सगाई, रुक्मिणी-मंगल, और रूप-मंजरी आदि कतिपय काव्य-ग्रंथों में नन्ददासजी की इस क्षमता का परिचय मिला है। उन्होंने घटनाओं और प्रसंगों को इस प्रकार जोड़कर रखा है कि कहीं भी शैथिल्य नहीं आने पाया। कवि की कुशलता इस बात में रही है कि उसने कथा में से कथा निकालने की प्रवृत्ति नहीं अपनायी।

चरित्र-चित्रण—नन्ददासजी के प्रमुख पात्र गोपवर श्रीकृष्ण और गोपियाँ ही रही हैं। चरित्र-चित्रण की विशेष स्थिति आई है रूपमंजरी में। यह भी दो पात्री है। इसमें पात्री हैं नायिका रूपमंजरी और उसकी सखी इंदुमती। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत पात्रों का समग्र व्यक्तित्व दिखाना पड़ता है। हम पहले भी कह आए हैं कि बाह्य सौन्दर्य-चित्रण में नन्ददासजी परम्परा से बँधकर ही चले हैं। वय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि नन्ददासजी के प्रमुख पात्र युगवस्था के हैं। कहीं नायिकाएँ अज्ञातयौवना हैं। जैसे विरह-मंजरी और रूप-मंजरी में, तो कहीं पूर्णयौवना हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नन्ददासजी पूर्णतः सफल रहे हैं। उन्होंने अपने किसी भी काव्य-ग्रंथ में पात्रों की भरमार नहीं लगाई है।

कला-पक्ष

भाषा—नन्ददासजी की भाषा ब्रजभाषा है। उनकी भाषा को लेकर ही किसीने लिखा है कि नन्ददासजी तो भाषा को सजाने में अत्यन्त कुशल रहे हैं—

"और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया"

शब्द विधान—शब्दों की रचना को लेकर ही यह कहा गया है कि नन्ददास जी की शब्दावली अत्यन्त मधुर रही है। ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप ही उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिया है। जहाँ-तहाँ कतिपय अन्य भाषाओं के शब्द भी आ गए हैं लेकिन ये वे शब्द हैं जो तबतक ब्रजभाषा में बिलकुल घुल-मिल गए थे। शब्दों की तोड़-मरोड़ वे स्वयं कर लेते हैं; लेकिन यह तोड़-मरोड़ अस्वाभाविक नहीं जँचती है। नन्ददासजी ने शब्द-गठन में नियमों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्होंने शब्द-मैत्री बड़ी ही कुशलता और सफलता से की है। उनका शब्द-विधान सुन्दर होने के साथ ही साथ कलापूर्ण भी रहा है। यों तो ब्रजभाषा अपने माधुर्य के लिए प्रसिद्ध ही है; फिर भी नन्ददासजी ने अपनी भाषा में सुकुमारता, प्रांजलता और माधुर्य का पूर्णरूपेण ध्यान रखा है।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे---उन्होंने अपनी रचनाओं में लम्बे समासों की, महाप्राण और संयुक्त वर्णों की यथासाध्य कमी ही रखी है। वे इस बात से पूर्णतः परिचित थे कि लम्बी सामासिक पदावली से काव्य में क्लिष्टत्व दोष आ जाता है।

नन्ददासजी की समस्त रचनाओं के वाक्य-विन्यास में व्याकरण सम्मतता प्राप्त होती है। इसीलिए उन्होंने जहाँ कहीं भी लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया है वहाँ बहुत सावधानी बरती है। इनके प्रयोग में सहजता, स्वाभाविकता और अनोखी भाव-व्यंजकता मिलती है।

इस बात का सर्वत्र ध्यान रखा गया है कि कोई भी शब्द अनर्गल और निरर्थक भर्ती का न हो। अर्थगाम्भीर्य पर्याप्त मात्रा में उनकी शब्दावली में मिलता है। ये न केवल मूलभाव या विचार के पोषक हैं वरन् अन्य यथेष्ट गंभीर भावों की भी व्यंजना करते हैं।

ब्रजभाषा के कवियों की एक और विशेषता रही है और वह हैं विशेषणों का प्रयोग। नन्ददासजी ने इसमें बड़ी सतर्कता से काम लिया है। उन्होंने विशेषणों के प्रयोग न केवल सौन्दर्य की विशेषता के लिए किए हैं और न विशेषणों का प्रयोग केवल चरणपूर्ति के लिए किया है; वरन् समस्त विशेषणों से वे एक विशेष अभिप्राय और हेतु की व्यंजना करते हैं। भक्ति की दृष्टि से भी प्रेम, अनुराग और प्रीति शब्द का प्रयोग सिद्धान्तानुसार किया गया है। यही बात विशेष्यों के प्रयोग के विषय में कही जा सकती है।

शब्दों के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि का भाषा पर जबरदस्त अधिकार है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याकरण—की दृष्टि से भी यदि देखें तो हमें नन्ददासजी के भाषा प्रयोग-कौशल को सराहना ही पड़ेगा। उन्होंने कहीं-कहीं कारकों और क्रियाओं का प्रयोग इस प्रकार का किया है कि यद्यपि वह व्याकरण के नियमों के सर्वथा अनुकूल नहीं कहा जा सकता फिर भी हमें वह भद्दा और भौंडा नहीं लगता, उसमें स्पष्टता है, सौन्दर्य है और उसमें पर्याप्त सुबोधता भी है।

अन्त में हम यही कहना चाहेंगे कि कवि ने भाषा को सर्वत्र सरल, सुबोध और स्पष्ट रखते हुए उसके माधुर्य और मृदुलता को बढ़ाने का ही प्रयास किया है।

रीतियों की दृष्टि से और गुणों की दृष्टि से भावानुकूलता का विशेष ध्यान रखा है। सर्वत्र प्रसाद और माधुर्य गुणों का प्राधान्य है। लालित्य की दृष्टि से भी भाषा में किसी प्रकार की कमी नहीं मिलती। डॉ० रसाल के शब्दों में "भाव-प्रवाह और वाक्य-प्रवाह दोनों के साथ भाषा का प्रवाह चलता है। × × शब्द-संगठन शब्दालंकारों से सफलतापूर्वक सुसज्जित किया हुआ है।"

छन्द—भावानुकूलता का ध्यान नन्ददासजी ने छन्दों के प्रयोग में रखा है जो किसी भी कवि के लिए परमावश्यक है। उन्होंने उन्हीं छन्दों को चुना है जिनमें गत्यात्मकता और लयात्मकता अत्यन्त सहज रूप से सरल और मंजुल है। उनके द्वारा प्रयुक्त छन्दों में प्रमुख हैं—रोला, दोहा, सोरठा, चौपाई। रास-पंचाध्यायी में केवल रोला छन्द का प्रयोग किया गया है। रूपमंजरी में उन्होंने चौपाई और दोहा छन्दों का प्रयोग किया है। भ्रमरगीत में उन्होंने दो छन्दों को मिलाकर एक छन्द विशेष की सर्जना स्वयं की है। रोला और दोहा के साथ उन्होंने 'प्रत्येक छन्द के साथ चलनेवाली अन्तिम टेक को भी छन्द के चरणगत भाव के साथ बड़ी ही चाहना से मिलाया है।' कतिपय उदाहरण देना हम यहाँ आवश्यक समझते हैं—

रोला— निकर प्रभाकर दुति भेंटत सुभमनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नंद कुँवर ऊगर सोइ लागत उडु जस ॥

—रास पंचाध्यायी

दोहा— वन पानी कौं कहत कवि, वन वारिद को जाल।
वन कानन तैं सुरभि सँग, वनि आवत नँदलाल ॥

—अनेकार्थध्वनि मंजरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौपाई— नासिक नथ जनु मनमथ वासी ।
हासी हरि देव कि मायासी ।।
मृदु कपाल छवि बरनि न जाई ।
झलकें अलक खुभी जिन माही ।।

—रूप मंजरी

सोरठा— बिपत न बरनी जाति, दई जु मास असाढ़ मोहि ।
औचक आधी राति, पीव, पीव पपिहा कर्‌यो ।।

—विरह मंजरी

दोहा-सोरठा और टेकवाला विशेष छन्द—
रोला— वे तुमतें नहि दूरि ज्ञान की अँखियनि देखौ ।
अखिल विस्व भरिपूरि रूप सब उनहि विसेखौ ।।
दोहा— लोह दारु पाषाण में जल थल मही अकास ।
सचर अचर बरतत सबै, जोति-ब्रह्म परकास ।।
(टेक) 'सुनौ ब्रजनागरी ।

इनके अतिरिक्त अनेक राग-रागनियों में पदों की भी रचना नंददासजी ने की है ।

अलंकार—अलंकार काव्य के धर्म कहे गए हैं । किसी सुन्दर नारी को जिस प्रकार आभूषण पहिना दिए जाने पर उसका सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ जाता है ठीक उसी प्रकार कविता में अलंकारों का भी स्थान है । नन्ददासजी ने दोनों ही प्रकार के अलंकारों—शब्दालंकारों और अर्थालंकारों—का प्रयोग किया है । शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष और काकु वक्रोक्ति तथा अर्थालंकारों में अधिकांशतः उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक और व्यतिरेक का प्रयोग मिलता है । यहाँ कुछ उदाहरण हम स्थानाभाव के कारण दे रहे हैं ।

अनुप्रास—पीत बसन बनमाल बनी मंजुल मुरली हथ ।
फंद मधुरतर हसत, निपट मनमथ के मनमथ ।।

इसमें मनमथके मनमथ में यमक भी देखिए ।

उत्प्रेक्षा—कोउ नगधर बरपिय की गहि रहि परिकर पटुकी ।
जनु नवघन तें सटकि दामिनि छटासु अटकी ।।

उपमा—नीलोत्पल दल स्याम अंग नव जोवन भ्राजै ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपक—कुटिल अलक मुख-कमल मनों अलि-अवलि विराजे ।
इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी प्रयाप्त मात्रा में मिलते हैं ।

शैली—नंददास जी ने अपने समय में प्रचलित राग-रागनियों में लिखे जाने वाली पदशैली को तो अपनाया ही, साथ ही सूफी कवियों और तुलसी की दोहा-चौपाई पद्धति को भी अपनाया है।'रूपमंजरी' 'विरहमंजरी' 'भाषा दशम स्कंध' इत्यादि में दोहा-चौपाई शैली और।'रूपमंजरी' में राग-रागनियों से बँधे पदों की शैली देखने को मिलती है । नन्ददास की शैली में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है । यद्यपि उन्होंने सूर इत्यादि की भाँति अपनी कविता में अपना नाम कहीं भी नहीं दिया, फिर भी उनकी रचनाओं से स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि यह नन्ददासजी की रचना है ।

काव्यों की दृष्टि से उन्होंने वर्णनात्मक और कथात्मक दो प्रकार के काव्य लिखे हैं । नन्ददासजी ने गत्यात्मक शैली का प्रयोग किसी भी वस्तु या दृश्य के वर्णन हेतु किया है । वर्णन-शैली की विशेषता यह है कि वर्णन के लिए केवल वे ही दृश्य और पदार्थ लेता है, जिनसे मानव-मन प्रभावित होता है । और जो रसोत्कर्षक तथा भावोद्दीपक होते हैं ।

कथा कहने की शैलो में रुचिरता और रोचकता दोनों का सम्बन्ध है । रासपंचाध्यायी में शृंगार रस की प्रधानता के कारण उसमें केवल भावना-प्रधान घटनाएँ हीं स्थान पा सकी हैं । इसीलिए घटना कथन में तो क्रियात्मक और भावनाभिव्यंजन में भावात्मक पद-विन्यास की शैलियों का उपयोग किया गया है । दृश्यादि के वर्णन में कवि ने चित्रांकन-शैली का उपयोग किया है । गोपी और कृष्ण के संवादों में कथागत वार्ता शैली ही कवि ने अपनायी है । भ्रमर-गीत में क्योंकि खंडन-मंडन दोनों हैं इसीलिए उसमें तर्कात्मक पक्ष-प्रतिपादन शैली मिलती है । इसीमें अन्योक्ति पद्धति का भी प्रयोग हो गया है । इसमें व्यंजकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है । साथ ही इसमें कवि ने बड़े ही कौशल के साथ भावनात्मक शैली का भी समावेश किया है ।

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि नन्ददासजी भले ही भक्त-कवि थे, इसी-लिए वहाँ भावना की प्रधानता की ही अधिक संभावना हो सकती थी; किन्तु उनके काव्य में उसका भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही अपने पूर्ण निखार के साथ प्रस्तुत हुए हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...ाय-ग्रन्थालय,
...निधि, करौंदी
वाराणसी-5

6 भँवर गीत परम्परा और उसमें नन्ददास का स्थान

भ्रमरगीत का अर्थ—'भ्रमरगीत' शब्द 'भ्रमर' और 'गीत' दो शब्दों के योग से बना है। भ्रमर श्यामवर्ण का एक उड़नेवाला लघु जीव होता है। इसके पर्याय मधुव्रत, मधुकर, मधुप, अलि द्विरेफ, षटपद, चंचरीक, अलिंद, सारंग, भृंग, भौंरा आदि हैं। इसका रंग काला होता है। उसके शरीर पर पीतचिह्न होता है तथा उड़ने के लिए पंख होते हुए भी षट्पद होते हैं। दूसरा शब्द गीत, गान का पर्याय है। इसीसे भ्रमरगीत का अर्थ हुआ भ्रमर का गान अथवा भ्रमर सम्बधी गान या भ्रमर को लक्ष्य करके लिखा गया गान।

'भ्रमरगीत' का उपर्युक्त अर्थ सामान्य कोटि में आता है। साहित्य में इस शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में होता है। उस अर्थ का सम्बन्ध राधा और गोपियों के आराध्य एवं नन्द-यशोदा के वात्सल्य-पात्र श्रीकृष्ण तथा उनके ज्ञान के अहंकार में चूर सखा उद्धव को लक्ष्य करके लिखे गए गीतों से है।

'भ्रमरगीत, का अर्थ-विस्तार—उद्धव का वर्ण काला था, वे योगी थे अतः पीतवस्त्र धारण करते थे। इस प्रकार भ्रमर से उनका वर्ण एवं वेश या साम्य था। 'अन्तर्मुखी' साधना में रत रहकर वे कमल संपुट में बन्द हो मौन समाधि लगानेवाले भ्रमर की समानता प्राप्त कर चुके थे। अतः कवि-प्रतिभा के माध्यम से वे भ्रमर के प्रतीकार्थ में सम्मिलित हो गए। इस प्रकार भ्रमरगीत का अर्थ हुआ उद्धव को लक्ष्य करके लिखा गया गान।

किंतु भ्रमरगीत का अर्थ यहीं तक सीमित नहीं रहा। उद्धव से आगे बढ़कर कवि-प्रतिभा ने श्रीकृष्ण में भी भ्रमर का वर्ण-वेश-साम्य खोज निकाला। श्रीकृष्ण का वर्ण श्याम माना गया है। यह भ्रमर से मिलता है। वे पीताम्बर धारण करते थे और भ्रमर के शरीर पर भी पीत छींटा होता है। वे स्वकंठ से वंशी की मधुर ध्वनि उत्पन्न कर रसिकों का मन मुग्ध किया करते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रमर भी स्व-गुंजन से सबका मन मोहित करता है। श्रीकृष्ण राधा एवं गोपियों का प्रेम छोड़कर मथुरा चले गए थे और भ्रमर भी एक पुष्प को छोड़कर दूसरे पुष्प पर चला जाता है। इस प्रकार दोनों ही भ्रमणशील माने गए हैं। भ्रमर यदि पुष्प-रस चुराता है तो श्रीकृष्ण ने भी गोकुल में गोरस की चोरी की थी। पुष्पों का प्रेमी होने के कारण भ्रमर कपटी एवं शठ है तो श्रीकृष्ण का शुभ-चांचाल्य एवं शठ नायकत्व भी उससे कुछ कम नहीं था। अतः कवियों की अद्भुत सूझ पर उन्हें भी भ्रमर के प्रतीकार्थ में सम्मिलित कर दिया गया। इस प्रकार भ्रमर का प्रतीकार्थ उद्धव एवं श्रीकृष्ण तक विस्तृत हुआ तथा भ्रमरगीत श्रीकृष्ण एवं उद्धव सम्बन्धी गान का प्रतीक बना। उधर भ्रमर भी अपना प्रतीकार्थ देकर भी उस गान से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सका। उसके माध्यम से वाह्य प्रकृति भी भ्रमरगीत की भाव-सीमा में सम्मिलित हो गई।

डॉ० सत्येन्द्र ने भ्रमर शब्द का अर्थ भ्रम में पड़ा हुआ या भ्रम में डालने-वाला भी लगाया है। भ्रमर के पूर्वोक्त दोनों प्रतीकार्थों—श्रीकृष्ण एवं उद्धव से इन दोनों अर्थों की भी पूर्ण संगति बैठ जाती है। यदि श्रीकृष्ण भ्रम में डालनेवाले भ्रमर थे तो उद्धव भ्रम में पड़े हुए भ्रमर थे।

डॉ० सत्येन्द्र ने भ्रमर का एक अन्य अर्थ पति या नायक भी स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—

"भ्रमर शब्द भी अर्थ-विकास की दृष्टि से भ्रमर नामक कीट से अर्थ-विस्तार करके कृष्ण का पर्याय हुआ और तब पति का भी पर्याय हो गया। लोक-गीतों में भी यही भ्रमर' 'भ्रँवर जी' होकर पति के लिए रूढ़ हो गया है।

श्रीकृष्ण भी ब्रजांगनाओं के परमपति थे जैसाकि भक्त-कवियों ने स्वीकार किया है तथा वे ब्रज की प्रेमिकाओं के नायक भी थे जिसकी स्वीकृति हमें रीति-कालीन काव्य में मिलती है। अतः भ्रमर को यदि पति या नायक के अर्थ में स्वीकार किया जाय तो भ्रमरगीत का आशय होगा पति या नायक को लक्ष्य करके लिखा गया गान।"

भ्रमरगीत के उपर्युक्त समस्त अर्थों में अन्तर्व्याप्ति मिलती है। भक्तिकाल मे अब तक हिन्दी-काव्य में श्रीकृष्ण और राधा तथा गोपियों के प्रेम-प्रसंग को लेकर उद्धव एवं भ्रमर के माध्यम से जो कुछ लिखा गया है वह सब भ्रमरगीत की सीमा में आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रमर षट्पद होता है अतः भ्रमरगीत के लिए एक षट्पदी छन्द का भी निर्माण कर लिया गया। इस प्रकार भ्रमरगीत केवल भाव एवं अभिव्यक्ति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं, उसका अर्थ-विस्तार छन्द के क्षेत्र तक हो गया है। हम भ्रमरगीत उस छन्द विशेष को भी कह सकते हैं जिसके छः चरण होते हैं। एक मात्रिक छन्द है जिसके प्रथम चार चरणों में २४-२४ मात्राएँ होतीं हैं। लय और यति की दृष्टि से इसके प्रथम दो चरण रोला छन्द के होते हैं मध्य के दो चरणों में दोहा होता है तथा शेष दो चरण अर्धाली के होते हैं। डॉ० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित 'भ्रमरगीत' को छन्द मानते हुए लिखते हैं—

"हमने इस छन्द का नाम "भ्रमरगीत' छन्द,' ही उपयुक्त माना है। यह मात्रिक छन्द है, जिसके प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं और अन्तिम पद अर्थात् अर्धाली या टेक में १० मात्राएँ होती हैं।"

सभी कवियों ने भ्रमरगीत लिखते समय भ्रमरगीत छन्द को नहीं अपनाया अतः यह आवश्यक नहीं है कि भ्रमरगीत शब्द भाव, अभिव्यक्ति एवं छन्द की दृष्टि से पूर्वोक्त अपने सभी अर्थों को सर्वत्र सामान्यरूपेण व्यक्त करे। यहाँ हमने भ्रमरगीत के समस्त अर्थों को बताने की चेष्टा इसलिए की है ताकि यह तथ्य स्पष्टतः प्रकाश में आ सके कि 'भ्रमरगीत' हिन्दी-काव्य में आत्मा एवं कलेवर दोनों ही दृष्टियों से पूर्णता प्राप्त करके एक विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित है।

भ्रमरगीत परंपरा—भ्रमरगीत प्रसंग के सर्वप्रथम दर्शन हमें श्रीमद्भागवत में होते हैं। उसके अन्तर्गत वह इस प्रकार है कि श्रीकृष्ण कंस के निमन्त्रण पर अक्रूरजी के साथ मथुरा चले गए। वहाँ कंस को मारकर उन्होंने अपने पिता वसुदेव का उद्धार किया। उनको मथुरा में आए पर्याप्त समय हो गया। वे अवधि बीत जाने पर भी गोकुल नहीं लौटे। इसी बीच कंस की एक कुब्जा नाम की दासी को कृष्ण ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो अपने प्रेम की अधिकारणी बनाया ...व नन्द-यशोदा आदि बहुत दुःखी हुए। उन गोपियों का तो कहना ही क्या [illegible] के साथ उन्होंने इतनी प्रेम-लीलाएँ की थीं। बहुत दिन बाद श्रीकृष्ण ने ज्ञानोप[illegible] द्वारा गोपियों को समझाने-बुझाने के लिए अपने सखा उद्धव को ब्रज में भेजा। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि उद्धव को ही क्यों भेजा ? इसका कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। कृष्ण का उनको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपियों के पास भेजने का यह अभिप्राय था कि वे उनकी प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता देखकर शिक्षा ग्रहण करें और सगुण भक्तिमार्ग की सरसता और सुगमता के समक्ष उनका ज्ञान-गौरव चूर होकर दूर हो जाए।

उद्धव ब्रज में आए और आते ही समस्त ब्रजवासियों ने उन्हें घेर लिया। वे नन्द-यशोदा से संदेश कह चुकने के अनन्तर गोपियों की ओर मुड़कर कृष्ण के संदेश के रूप में चर्चा छेड़ बैठे। इसी बीच एक भौंरा उड़ता-उड़ता गोपियों के पास आकर गुनगुनाने लगा तो गोपियाँ उसी भ्रमर को सम्बोन्धित करके जो मन में आया कहने लगीं। इसी प्रसंग का नाम भ्रमरगीत पड़ा। उद्धव उनके प्रेम से परिपूर्ण उपालम्भों को सुनते हैं तो उनका ज्ञान-गौरव समाप्त हो जाता है। वह विराग की तूमड़ी में प्रेम-रस भर लेते हैं।

भागवत में भक्त की महिमा स्वीकारी गई है परन्तु ज्ञान के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा गया जैसाकि आगे के अन्य 'भ्रमरगीत' कारों ने किया है। वहाँ भगवान का उपदेश सुन गोपियो को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ और वे उसीमें लीन हो गईं।

सूरदास का भ्रमरगीत—सूरदासजी ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं। एक भ्रमरगीत तो भागवत का अनुवाद है; किन्तु उसमें ज्ञान वैराग्य की चर्चा होते हुए भी अन्त में भक्ति की विजय दिखाई है। यह भ्रमरगीत चौपाई छन्दों में है। अन्य दो पदों में हैं। इन प्रथम दो भ्रमरगीतों में भ्रमर के आने का वर्णन कहीं नहीं मिलता, केवल मधुकर नाम से ही उद्धव को उपालंभ दिया गया है। तीसरा भ्रमरगीत ही सर्वश्रेष्ठ है। इसीमें भ्रमर का गोपियों के मध्य प्रवेश वर्णित है और तब गोपियाँ उसे लक्ष्य करके उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं। इसमें और भागवत के भ्रमरगीत प्रसंग में पर्याप्त भेद अपनी मौलिक सूझ से सूरदासजी ने कर लिये हैं। हम विस्तारभय से यहाँ उन सभी का उल्लेख नहीं करेंगे; फिर भी मूल दो भेदों पर सांकेतिक प्रकाश डालेंगे। पहला भेद तो यह है कि भागवत में भक्ति की महिमा अवश्य गाई गई है परन्तु ज्ञान के विरुद्ध एक भी शब्द कहीं नहीं आया। वहाँ भगवान का आदेश सुन गोपियों को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ और वे उसीमें में लीन हो जाती हैं। 'भ्रमरगीत' में भक्ति की ज्ञान पर विजय दिखाई है किन्तु सूरदासजी की समस्त भ्रमरगीत की धारा सगुणोपासना की ओर ही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बात और भी ध्यान देने की है भागवत के भ्रमरगीत में कहीं भी गोपियों को व्यंग्यार्थ प्रयोग करने का अवसर नहीं मिला। सूरदास इस दृष्टि से मौलिक हैं। उन्होंने इसके लिए कंस के दरबार में विद्यमान कुब्जा को चुना है।

फिर भी हम यह धारणा नहीं बना सकते कि सूरदासजी ज्ञान-मार्ग से अनभिज्ञ थे। उन्होंने निराकार ब्रह्म की महत्ता 'अविगति गति कछु कहत न आवै' और 'अविगति गति जानी न परै' कहकर स्वीकार की है।

गोपियों की वचनावलियों में मनोवैज्ञानिकता का विशेष महत्त्व रहा है। गोपियों को कहीं तो यह सन्देह होता है कि इन्हें श्रीकृष्ण ने भेजा ही नहीं और कभी वे पूछती हैं—

सांच कहौ तुमकौं अपनी सौं बूझति बात निदान।
सूर स्याम जब तुमहिं पठाए तब नैकहु मुसकाने ॥—इत्यादि।

इसी प्रकार के तर्क-वितर्कपूर्ण अनेक कथन सूर के भ्रमरगीत में विद्यमान हैं। अन्ततोगत्वा उद्धव का ज्ञान-गौरव गोपियों के प्रेम-गाम्भीर्य के समक्ष टिक नहीं पाता और वे गोपियों से अत्यन्त प्रभावित होते हैं। मथुरा लौटकर कृष्ण से ही उल्टी-सीधी कहते हैं। तब कृष्ण भी यही कहते हैं कि मुझे भी 'ब्रज बिसरत नाहीं।'

नन्ददास का भ्रमरगीत—नन्ददास के भ्रमरगीत में विचारों की एक संवाद के रूप में शृंखला चलती है। यह एक क्रमबद्ध रचना है। हाँ, इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि इसमें उत्तर-प्रत्युत्तरों की क्रमबद्ध-शृंखला नहीं है। इसमें और सूर के भ्रमरगीत में अन्तर है।

इस भ्रमरगीत का प्रारम्भ होता है गोपियों के परिचय से—उद्धव आते हैं और गोपियों को अपना परिचय देते हुए, उनकी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि उपदेश सुनो—

ऊधो का उपदेस सुनो ब्रजनागरी।
रूप, सील, लावन्य सबै गुन आगरी ॥
प्रेम-धुजा रस-रूपिनी, उपजावति सुख पुंज।
सुन्दर स्याम विलासिनी नव वृन्दावन कुंज ॥
सुनो ब्रजनागरी।

इससे स्पष्ट है कि गोपियों में प्रेम, सुख, रस और विलास चार मुख्य तत्त्व हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और वे श्रीकृष्ण में अनुरक्त हैं।

श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही गोपियों को पूर्वस्मृति हो आई और वे मूर्छित हो गईं। उनकी प्रेमात्मकता का परिचय इसीसे मिल जाता है कि वह कितनी प्रगाढ़ थी। उद्धव ज्ञानोपदेश का प्रारम्भ करते हैं और कहते हैं कि तुम यदि ज्ञान की आँखों से देखोगी तो तुम कृष्ण को अपने निकट ही पाओगी, वे तुमसे दूर नहीं हैं।

इस भ्रमरगीत के तीन अंश कहे जा सकते हैं—१. गोपी-उद्धव संवाद। २. कृष्ण को उपालम्भ और ३. उद्धव का मथुरा प्रत्यागमन तथा गोपियों की दशा का वर्णन।

उद्धव गोपियों के संवाद में ब्रह्म, जीव, कर्मवाद, ज्ञान इत्यादि सभी पर चर्चा हुई है लेकिन गोपियाँ इन सभी के मूल में मुक्ति की भावना को ही नहीं स्वीकारती। गोपियों के तर्क अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं यद्यपि कहीं-कहीं असंगतता और तर्कविहीन कथन भी हैं। फिर भी इस दृष्टि से हम इस भ्रमरगीत को अद्वितीय कह सकते हैं। प्रत्युत्पन्नमतित्व इन गोपियों से कोई सीखे। सूर के भ्रमरगीत की भाँति नन्ददास की वे गोपियाँ कटूक्तियाँ नहीं कहतीं।

नन्ददासजी ने "भागवत का सहारा लेकर बड़ी सुन्दरता से प्रेमाभक्ति का निपुण निरूपण करते हुए अध्यात्मपक्ष का प्रतिपादन श्रृंगार-रस शुद्धावरण में किया है।"

सत्यनारायण कविरत्न का भँवरगीत—आधुनिक युग में सत्यनारायणजी कविरत्न का 'भँवरगीत' प्रस्तुत परम्परा में हमें मिलता है। इस भँवरगीत में कोई मौलिक भेद भागवत की इस परम्परा की धारा से नहीं है फिर भी कथन की शैली पर कवि की छाप स्पष्टतः देखी जा सकती है। गोपियों में नन्ददास की गोपियों की तर्कशीलता और सूर की गोपियों की भावुकता दोनों एक साथ ही उपलब्ध होती हैं।

उद्धवशतक—रत्नाकर द्वारा प्रणीत उद्धवशतक में गोपियों और उद्धव के इसी संवाद को लेकर पर्याप्त मौलिकता हमें मिलती है। प्रथम तो ग्रन्थ का प्रारम्भ ही बड़े विचित्र ढंग से किया गया है। कृष्ण यमुना स्नान हेतु गए और वहाँ यमुना में बहते हुए एक कमल को उठाकर सूँघ लिया। इसमें से राधा के शरीर की गंध आई और कृष्ण बेसुध हो गए। अन्य भ्रमरगीतकारों ने केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेत रूप में हैं. प्रणय के दोनों पक्षों को समान दिखाया है परन्तु उद्धवशतक के कृष्ण भी उतने ही व्याकुल हैं जितनी गोपियाँ। पराजय सभी की भाँति यहाँ भी ज्ञान की ही हुई है। कवि ने अपने इस उद्देश्य का संकेत प्रारम्भ में ही दे दिया है कि व्रज-प्रदेश में पहुँचते ही (गोकुल में) उद्धव का ज्ञान-गौरव धीरे-धीरे भागने लगा। यह भ्रमरगीत परम्परा का अन्तिम ग्रंथ है।

नन्ददास का स्थान—व्रजभाषा के कवियों में विद्वानों ने सूर के बाद नन्ददास का द्वितीय स्थान स्वीकार किया है। इसमें न तो किसीके साथ उन्होंने अन्याय वरता है और न उनका कोई पूर्वाग्रह ही दृष्टिगोचर होता है। सूर की गोपियों में जहाँ भावुकता का प्रावल्य है वहाँ उनमें तर्कशीलता, प्रत्युत्पन्नमतित्व उतना नहीं जितना नन्ददास की गोपियों में है। नन्ददासजी ने तो समस्त वार्तालाप को ही तर्क-वितर्क के रूप में चलाते हुए समस्त वर्णन इतनी भावुकता की पूर्णता के साथ किया है कि काव्य-कौशल की दृष्टि से मनोमुग्धकारी तो है ही उसका प्रभाव भी अक्षुण्ण पड़ता है। सूर में या अन्य भ्रमरगीतकारों में जहाँ विशदता है वहाँ नन्ददासजी ने उसी समस्त तर्क को केवल ७५ छन्दों में ही गुंफित कर रखा है और देखने की बात यह है कि शैथिल्य कहीं भी नहीं है। गोपियों के प्रेम, विरह-कातरता और वियोग की आन्तरिक संयोग-स्थितियों का वर्णन अत्यन्त सुन्दर और भावमयी भाषा में किया गया है। गोपियों के अनुभाव देखने के योग्य हैं। यह हम स्वीकारते हैं कि सूरदास या रत्नाकर की भाँति इसका ...-पक्ष इतना प्रवल नहीं है फिर भी हमें काव्य-कला के पर्याप्त तत्वों का समावेश यहाँ मिलता है। भ्रमरगीत की प्रभविष्णुता और मार्मिकता का प्रमाण इससे बड़ा और क्या हो सकता है कि पाठक को पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो गोपियों के इस प्रेममय आत्म-निवेदक स्वर में नन्ददास का स्वर भी मिल रहा है। अन्त में हम श्री व्रजरत्नदास के शब्दों में कहेंगे कि—"कवि ने निजी प्रेम-भक्ति की उत्कृष्टता, स्वहृदयगत भक्ति-भावना की तन्मयता तथा इष्ट मिलन की उत्कट आकांक्षा सभी का ऐसा सुन्दर-सरस वर्णन किया है कि वे उनकी अनुभूति-सी ज्ञात होती हैं और उनका श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता है।

नन्ददासजी का स्थान क्या काव्य-कला और क्या भक्तिभाव-निरूपण दोनों की दृष्टि से भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास के बाद आता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रास पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

वन्दन करौं कृपा-निधान श्री शुक शुभकारी।
शुद्ध जोतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी ॥१॥
हरि-लीला रस-मत्त मुदित नित बिचरत जग में।
अद्भुत गति कतहूं[1] न अटक ह्वै निकसत नग[2] में ॥२॥

शब्दार्थ—सुभ कारी=शुभं करोति इति शुभकारः अर्थात् (मंगलमय) कार्य करनेवाला। जोतिमय=तेजोमय, तेजस्वी। अविकारी=विकार रहित। हरि-लीला रस-मत्त=प्रभु की लीला के आनंद से विभोर होकर। कत हू न अटक ह्वै निकसत मग में=मार्ग में बिना कहीं अटके, रुके निकलते हैं।

प्रसंग—कवि श्री शुकदेवजी की शक्ति-सामर्थ्य का गुणगान करते हुए उन की वन्दना करता है—

व्याख्या—जो लोकों के लिए मंगलमय कार्य करते हैं, विकार-रहित होकर विशुद्ध (निश्छल) अन्तःकरणवाले बने रहते हैं। जिनकी शारीरिक कांति सदैव तेजोमयी रहती है, ऐसे श्री शुकदेवजी का मैं वन्दन करता हूँ, वे भगवान श्रीकृष्ण की लीला के आनन्द में ही विभोर हुए समस्त संसार में विचरण करते हैं प्रसन्न मन होकर। उनकी गति के विषय में क्या कहा जाय वह तो अद्भुत है (क्योंकि) वे बिना कहीं अटके हुए ही वे प्रत्येक मार्ग से निकल जाते हैं जब कि अन्य सामान्य पथिकों को अपने विचरण के समय अनेक बाधाओं से टकराना पड़ता है परन्तु श्री शुकदेवजी निर्द्वन्द्व सर्वत्र विचरण करते हैं।

पाठान्तर—१. कहुँ नाहि न, २ निकले मग, निकसे जेहि मग में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—(१) शुकदेवजी की वन्दना करने का एक विशेष कारण है। नन्ददासजी कृष्ण-भक्ति के अनुयायी थे और यह भक्ति श्री शुकदेवजी की ही अनुकम्पा से 'सर्वोच्च शिखरस्थ' मानी गई है। इन्हीं की कृपा से यह लोकव्यापिनी बन गई है।

(२) प्रश्न उठ सकता है कि नन्ददासजी ने कृष्ण की वन्दना क्यों नहीं की? इसका भी एक कारण हमें विशेषतः मालूम होता है—भगवान से अधिक उसके भक्त का महत्व माना गया है—'हरि ते प्रिय मोहि हरिकर दासा' अथवा 'अगुन-गुननु बरनान ते सीता-पति नित होंहि बस' क्या कृष्ण-भक्ति क्या राम-भक्ति सभी में भक्तों का बड़ा महत्व है। एक और भी बात है—भगावत जैसा पुनीत ग्रंथ जो कृष्ण-भक्त कवियों की प्रेरणा का स्रोत रहा है, शुकदेवजी के ही श्रीमुख से निकलकर इतनी मधुरता और इतनी अमरता को प्राप्त कर गया है—

"निगम कल्पतरोर्गलितं फलं,
शुक-मुखादमृतद्रव संयुतम्,
पिबत भागवतं रसमाल यां,
मुहुरहो रसिका: भुवि भावुका:।"

(३) ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए कवि ग्रंथ के प्रारम्भ में मंगलाचरण लिखते हैं। नन्ददासजी ने भी श्री शुकदेवजी की वन्दना करके मंगलाचरण-वाले शास्त्रीय नियम का पालन किया है। वे शुकदेवजी के शारीरिक सौंदर्य के वर्णन के साथ इस परम्परा का निर्वाह करते हैं। लोग शंका कर सकते हैं कि यह आंगिक सौन्दर्य वर्णन कैसा जो नखतः-शिख न होकर 'शिखतः-नख' है, उनकी इस शंका का समाधान यही है कि यहाँ पुरुषों के सौन्दर्य का वर्णन शिख की ओर से नख तक दिया जाता है, जबकि अन्य सामान्य नायिकादि के सौन्दर्य-वर्णन में 'नख-शिख' वर्णन होता है।

(४) अन्वय के उलट-फेर से कई अर्थ और भी निकलते हैं।

(५) २४ मात्राओंवाला क्रमशः ११ और १३ मात्राओं पर विराम के साथ यह रोला छन्द है। इसका लक्षण है—'रोला कल चौबीस रुद्र-सरिता यति धारी' गणों के विचार से इसका लक्षण है—आदि, मध्य, अवसान में य र त, हा में लघु होय। भ,ज,स। में गुरु जानिये, न म लघु-गुरु सब जोय ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(६) अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार है क्योंकि सकारण-निर्देश के एक बात कही है—गति के अद्भुत होने का कारण मग में 'कतहूं न अटक ह्वै' निकसना है।

नीलोत्पल-दल स्याम अंग नव-जोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख-कमल मनौं अलि-अवलि विराजै ॥३॥
ललित विसाल सुभाल दिपत जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भगति प्रतिबंध[1] तिमिर कहूँ कोटि दिवाकर ॥४॥

शब्दार्थ—नीलोत्पल-दल=नीलवर्ण कमल की पंखुड़ियाँ। नव-जोवन भ्राजै=नवीन यौवन मनहर लग रहा है। कुटिल अलक=घुंघराले बाल। अलि-अवलि=भौंरों की पंक्ति। सुभाल=सुन्दर मस्तक। विशाल=चौड़ा (उन्नत ललाट जिसे कहा जाता है)। निकर—समूह, निकलता हो। दिवाकर—सूर्य।

प्रसंग—श्री शुकदेवजी की मुख-छवि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

व्याख्या—शुकदेवजी के नील कमल की पंखुड़ियों के समान श्याम वर्ण वाले अंग में नवीन यौवन मनहरण लग रहा है। उनके घुंघराले (काले) केश उनके कमल सदृश मुख-मण्डल पर झुककर गिर पड़े हैं। ऐसा लगता है मानो कमल के पुष्प पर भौंरों की पंक्तिबद्ध टोली विराजमान हो। उनका सुन्दर और उन्नत ललाट ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो चन्द्रमा उदित हो रहा हो किन्तु वही उन लोगों की उन कलुषमयी भावनाओं के अंधकार के लिए जो कृष्ण-भक्ति की भावना पर रोक लगाती हैं, करोड़ों सूर्यों के समान है।

विशेष—(१) यहाँ नन्ददासजी ने प्रथम तो मुख से कमल की उपमा दी फिर उसीसे चन्द्रमा की उपमा दी; इसके दो कारण हैं। कमल से उपमा देकर उनके मुख की सुकुमारता, कोमलता और गंधमयता की ओर संकेत किया है। चन्द्रमा से उपमा देकर उनकी मुख-कान्ति और दर्शकों को शीतलता प्रदान करने की ओर संकेत किया है।

(२) 'ललित विसाल···निसाकर' में निकर का अर्थ किरणों से ले लिया

पाठान्तर—१. प्रतिबिंब।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाय तो इसका अर्थ होगा मानो विधाता ने उनके मुख की रचना चन्द्रमा की दीप्तिमयी शीतल किरणों के समूह से की हो। यदि निकर का अर्थ समूह से ले लें तो अर्थ होगा 'मानो अनेक चन्द्रमाओं का समूह हो' इस अर्थ में व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा दो अलकारों का समावेश होता है। यदि कहें कि व्यतिरेक गर्भित उत्प्रेक्षा है तो अधिक समीचीन होगा।

(३) कृष्ण-भक्ति-प्रतिबंध दिवाकर,' इस पंक्ति से जो अर्थ निकलता है वह शुकदेवजी के व्यक्तित्व के एक दूसरे पक्ष पर प्रकाश डालता है। भक्तों के माथे पर जो तेज छलकता है उसके समक्ष कोई भी पातकी ठहर नहीं पाता; क्योंकि तत्क्षण उसके मन की भक्ति के ऊपर जिन कलुषमयी माया-मोह इत्यादि के जाल में फँसी भावनाओं का पर्दा पड़ा रहता है, वह हट जाता है और वह शुद्ध निश्छल भय से कृष्ण-भक्ति में प्रवृत्त हो जाता है। शुकदेव की भक्ति-भावना की चरमसीमा और उनके भक्त के महत्व को प्रकाशित करता है यह चरण।

(४) 'नीलोत्पल-दल श्याम अंग, में उपमा, 'मुख-कमल' में रूपक 'कुटिल-अलक···बिराजै,' और 'ललित···निसाकर' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। कृष्ण-भक्त प्रतिबंध-तिमिर' में पुनः रूपक है।

(५) भाषा की सामासिकता ने छन्दों के सुष्ठ संगुम्फन में सहायता दी है।

कृपा-रंग-रस-ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण-रसासव[1]-पान-अलस[2] कछु घूम घुमारे ॥५॥
उन्नत नासा अधर बिंब सुक की छबि छीनी।
तिन बिच[3] अद्‌भुत भाँति लसति कछु इस मसि भीनी ॥६॥

शब्दार्थ—ऐन=घर। रतनारे=रक्तिम। अलस=मदालस से परिपूर्ण। घूम घुमारे=तिरछे अर्थात् कटाक्ष की-सी स्थिति में। उन्नत=उभरी हुई। नासा=नासिक, नाक। बिंब=बिंबा नामक फल जो लाल वर्ण का होता है। मसि=स्याही, कालिमा। भीनी=छलकती हुई सी।

प्रसंग—शुकदेवजी के सौन्दर्य का वर्णन।

व्याख्या—दया-भाव के रस के घर अर्थात् दयाभाव से परिपूर्ण आभावाले उनके रक्तिम (अरुणिम, शरबती) नेत्र बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। उन्होंने कृष्ण-

---

पाठान्तर—१. रसामृत। २. करत। ३. मधि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति के रस के आसव का पान कर लिया है अतः कुछ तिरछे हो गए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्ण के आनन्द का पान करने से उनके नेत्र उसी प्रकार अलसाये और तिरछौंहे हो गए हैं जैसे कि किसी मद्यप व्यक्ति के। उनकी उभरी हुई नासिका ने शुक (तोते) की और अधरों ने अपनी लालिमा से बिम्बाफल की सहज छवि को छीन लिया है। इन दोनों के बीच उगती हुई-सी एक कालिमा विचित्र प्रकार से सोह रही है अर्थात् उगती हुई मूंछों (रेखों) की यह कालिमा नासिका और अधरों के बीच अत्यन्त सुन्दर लग रही है।

विशेष—(१) प्रथम पंक्ति का अन्वय बदलने से एक और अर्थ निकलता है— कृपा (दया-भाव) के रंग अरुणाभ हुए उनके भक्ति रस से लबालब नेत्र सुशोभित हो रहे हैं।

(२) 'उन्नत नासा·········छीनी' में व्यतिरेक अलंकार है। इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र अनुप्रास की छटा है।

(३) 'उन्नत नासा·········छीनी' में अक्रमत्वदोष भी है। कुछ टीकाकारों ने "विम्बाफल की छवि को छीननेवाले अधरों के ऊपर उभरी हुई शुक की छवि को छीननेवाली नासिका है।" यह अर्थ करके इस दोष को छिपाने का प्रयास किया है किन्तु ऐसा करने पर वर्णन 'शिख-नख' न रहकर 'नख-शिख' हो जाएगा जो स्वयं में कवि की असामर्थ्य का द्योतक है अतः हमें यहाँ यह दोष स्वीकार करना ही पड़ेगा।

(४) भाषा में सामासिकता है।

स्रवन कृष्ण-रस-भवन[1] गंड मंडल भल दरसैं।
प्रेमानन्द मिली[2] सुमंद मुसकनि मधु बरसैं ॥७॥
कंबु कंठ की रेख देखि हरि-धरमु प्रकासैं।
काम-क्रोध मद लोभ मोह जिहिं निरखत नासैं ॥८॥

शब्दार्थ—स्रवन=श्रवण, कान। कृष्ण-रस-भवन=कृष्ण की भक्ति की बातों के रस का भवन। गंडमंडल=कपोल पाली, कनपटी। भल दरसैं=भला दिखाई दे रहा है। प्रेमान्द मिली=कृष्ण-प्रेम के आनन्द से मिश्रित। मुसकनि= मुसकानों से। मधु बरसैं=रस-वृष्टि होती है। कंबु-कंठ=शंख के समान

पाठान्तर—१. भरन। २. मलिन्द मन्द।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कंठ। हरि-घरमु=कृष्ण-भक्ति। प्रकासै=प्रकट करती है। जिहिं—जिसे। निरखत—देखते ही। नासै—नष्ट हो जाता है।

प्रसंग—गुण और सौंदर्य के साथ रूप-वर्णन।

व्याख्या—उनके कान केवल कृष्ण-भक्ति के आनन्द से परिपूर्ण बातों को ही सुनकर रसास्वादन करते रहे हैं अतः उनमें एकमात्र इसी रस का समावेश हो पाया है, अन्य किसीका नहीं। फलस्वरूप ये इसी के घर हैं अर्थात् उनके कर्ण-कुहरों में केवल कृष्ण-भक्ति-रस से परिपूर्ण बातें ही प्रविष्ट हो पाती हैं अन्य बातों की ओर उनका ध्यान नहीं जाता है। इनके नीचे कपोल-पट्ट या कपोल-पाली (कनपटी) सुन्दर लग रही है। उनके अधरों पर छलकती हुई प्रेमानन्द मिश्रित मंद-मंद मुस्कराहट से रस-वर्षण होता रहता है। उनके शंखाकार कंठ की रेखाओं को देखने मात्र से देखनेवाले के हृदय में भी कृष्ण-भक्ति का प्रकाश अंकुरित हो जाता है जिसे देखते ही (कृष्ण-भक्ति में अब तक बाधक) काम-वासना, क्रोध, अहंकार, लोभ और मोह नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—'कंबु-कंठ' में लुप्तोपमा और समस्त रोला में यत्र-तत्र छेक और श्रुत्यनुप्रास अलंकार हैं।

उर-बर पर अति छबि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहिं अन्तर[1] जगमगत निन्तर कुंवर कन्हाई ॥९॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय-सरबर रस पूरि चली मनु उमंगि पनारी ॥१०॥

शब्दार्थ—बर=सुन्दर। भीर=आधिक्य, अधिकता। बरनि न जाई=वर्णनातीत है। अन्तर=भीतर। पनारी=मोरी।

प्रसंग—वक्षस्थल और उदर-प्रदेश का रूप-वर्णन करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं—

व्याख्या—उनके सुन्दर हृत्प्रदेश पर (वक्षस्थल पर) सौन्दर्य की अधिकता कितनी है इसका कोई सही हिसाब-किताब नहीं दे सकता। वह तो वर्णनातीत है। इसीके भीतर नित्य प्रति कुंवर कन्हैया जगमगाते रहते हैं। उनके उदार गुणों से परिपूर्ण सुन्दर उदर-प्रदेश पर श्यामल रोमावलि अत्यन्त सुन्दर लग रही है।

पाठान्तर—१. भीतर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा लगता है मानो उनके हृदयरूपी सरोवर से उमगकर यह रस से परिपूर्ण एक मोरी निकलकर बह चला हो।

विशेष—(१) कृष्ण का वर्ण श्याम है—'मेघवर्णं शुभाङ्गम्' और स्वयं शुकदेवजी का भी; अतः उनके वक्ष-प्रदेश का श्यामल होना तो स्पष्ट हो ही गया। सरोवर का पानी भी घनत्व के कारण नील-मेघ-वर्ण का ही लगता है। रोमावलि श्यामल वर्ण की है इसीलिए यहाँ रोमावलि को उसके आकार के कारण एक नाली की भाँति नन्ददास ने मान लिया है लेकिन यह उचित नहीं। शुकदेव के हृदयरूपी सरोवर में कृष्ण की भक्ति का श्वेत या अरुण रंग भरा है तो उससे यह श्यामल रंगवाली नाली कैसे बह चली ?

(२) छेक और श्रुत्यनुप्रासों के अतिरिक्त 'हिय-सरबर' में रूपक अलंकार है और 'चली मनु उमगि पनारी' में हेतूत्प्रेक्षा है। 'उदर उदार' में यमक। 'रस' और 'उमँगि' शब्द श्लिष्ट हैं।

(३) छन्द में दो स्थलों पर एक-एक मात्रा बढ़ गई है अतः दोष आ गया है; किन्तु यह क्षम्य है। काव्य-शास्त्रियों ने १ मात्रा के बढ़ने या घटने को दोष नहीं माना। गतिभंग यदि पढ़ते समय न हो तो इस मात्राधिक्य या कम हो जाने का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता; फिर भी अखरता तो है ही।

ता[1] रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी।
त्रिबली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ॥११॥
गूढ़ जानु आजानु बाहु मद-गज-गति लोलैं।
गंगादिकनि पवित्र करत अवनी पर डोलैं ॥१२॥

शब्दार्थ—ता रस की=उस रस की। कुंडिका=कुण्डी। त्रिबली=नाभि के पास तीन आड़ी रेखाएँ होती हैं उन्हीं को त्रिवली कहा जाता है। गूढ़जानु=भठी हुई जंघाएँ। आजानु बाहु=घुटनों तक लम्बी बाहें। लोलैं=सुन्दर लगती हैं। गंगादिकनि=गंगा आदि पवित्र मानी जानेवाली नदियों को। करत=करते हुए। डोलैं=घूमते हैं।

प्रसंग—शुकदेवजी के नाभि-प्रदेश और जंघाओं तथा भुजाओं का सौन्दर्य-वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

पाठान्तर—१. जिहि।

आम्नाय-ग्रन्थालय, ...निधि, करौंदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—नाभि रस कुंडिका है जो अत्यन्त गहरी है तथा सुन्दर लग रही है। उसके ऊपर उभरी हुई तीन गाढ़ रेखाएँ ऐसी लगती हैं मानो उस कुण्डिका में लहरें उत्पन्न हो रही हों। उनकी जाँघें गठी हुई (सुडौल) हैं। उनकी भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं। जिस समय वे चलते हैं तो उनकी चाल उसका मदमातापन दोनों ही हाथी की गति और गति-मद जैसे लगते हैं। वे इसी प्रकार समस्त भू-मण्डल पर घूमते हुए गंगा आदि पवित्र मानी जानेवाली नदियों को पवित्र करते रहते हैं।

विशेष—(१) सौन्दर्य-वर्णन परम्परागत ही है अतः उसमें कोई नवीनता तो नहीं आ पाई फिर भी वर्णन भावमय और सरसता से समन्वित है। जहाँ तक अलंकारों का प्रश्न है परम्परागत वे भी हैं किन्तु उनमें भी भावगाम्भीर्य पर्याप्त है। यही नन्ददासजी की विशेषता है।

(२) 'तारस······नाभि' में रूपक, 'त्रिबली तामहँ······लहरी' में उत्प्रेक्षा है। इन दोनों चरणों में सांगरूपक का-सा आभास भी होता है। दोनों में यदि यह कहें कि सांगरूपक गर्भित उत्प्रेक्षा है तो उचित रहेगा। 'जानु' और 'आ-जानु' में सभंग यमक अलंकार है। 'मद-गज-गति-लोलैं' में उपमा है और 'गंगा-दिकनि·········डोलैं' में प्रतीप अलंकार है।

(३) संगीतात्मकता से परिपूर्ण शब्द और पदावली कोमल है, कान्त है और विभोर कर देने का गुण सर्वोपरि है।

जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगनि तें दूरि भए दुरि।
पसरि पर्‌यौ अँधियार सकल संसार घुमरि घुरि ॥१३॥
तिमिर ग्रसति सब लोक ओक लखि दुखित दयाकर[1]।
प्रगट कियौ अद्‌भुत प्रभाउ भागवत विभाकर ॥१४॥

शब्दार्थ—दिनमनि श्रीकृष्ण=सूर्य के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण या श्रीकृष्ण रूपी सूर्य। दुरि=छिपकर। पसरि पर्‌यौ=फैल गया। घुमारि घुरि=घुमड़कर और घिरकर। तिमिर–ग्रसित=अन्धकाराच्छादित, अन्धकार से ढँके हुए। दुखओक=दुख का भवन। भागवत-विभाकर=भागवत रूपी सूर्य।

प्रसंग—भागवत की उत्पत्ति किस कारण और क्यों की गई इसी रहस्य का

पाठान्तर—१. बिकल जब देखि दयाकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्घाटन प्रस्तुत छन्दों में है—

व्याख्या—जब सूर्य के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण नेत्रों से ओझल हो गए तो समस्त संसार के ऊपर अन्धकार उमड़कर और बार-बार घनत्व के साथ घिर-कर फैल गया; अर्थात् समस्त संसार पर अन्धकार का साम्राज्य हो गया। तब दया-निधान श्री शुकदेवजी ने समस्त संसार को अन्धकाराच्छादित देखा तो अपने अद्भुत प्रभाव से भागवत रूपी सूर्य को उदित किया अर्थात् जब श्रीकृष्ण सांसारिक लोगों के निश्च्छल हृदय पर किंचिन्मायावरण पड़ता हुआ देखकर दृष्टि से ओझल हो गए तो समस्त संसार उनके विरह में दुःख के अन्धकार से घिरने लगा तब शुकदेवजी ने इस आवरण को हटाने के उद्देश्य से भागवत जैसे पवित्र और श्रीकृष्ण दर्शन का मार्ग प्रशस्त करनेवाले ग्रन्थ की रचना की।

विशेष—(१) 'दुरि-दूरि' में यम का भास है, 'दिन मनि श्रीकृष्ण' तथा 'भागवत-विभाकर' में रूपक अलंकार है। समस्त छन्दों में काव्यलिंग या हेतु अलंकार है।

(२) सुललित पदावली में संगीतात्मकता तो है ही, साथ ही यत्र-तत्र ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता भी है। 'पसरि पर्‌यौ' में लक्षण हैं।

(३) हरिऔधजी ने भी 'प्रिय प्रवास' में श्रीकृष्ण के छिप जाने पर ऐसे ही अन्धकार के विषय में पर्याप्त लिखा है।

ताहू में पुनि[1] अति रहस्य यह पंचाध्याई।
तन मंह जैसे पंचप्रान अस सुक मुनि गाई॥१५॥
परम रसिक इक मीत मोहि तिन्ह आज्ञा दीन्ही[2]।
तातें मैं यह कथा जथामति भाषा कीन्ही[3]॥१६॥

शब्दार्थ—ताई मैं=उसमें भी। पुनि=फिर। अस=इस प्रकार। मीत=मित्र। मोहि=मुझे। तिन्ह=उन्होंने। तातें=इसीसे, इसलिए। जयामति=अपनी बुद्धि के अनुसार। जथाभाषा=अपनी भषा के अनुसार।

प्रसंग—रासपंचाध्यामी का महत्व प्रतिपादित करते हुए नन्ददासजी अपने इस ग्रन्थ के लिखने के कारण की परिचर्चा करते हैं—

व्याख्या—फिर उस भागवत में भी यह पंचाध्यायी अत्यन्त रहस्यमय है।

पठान्तर—१. ताही मैं मनि। २. दीनी। ३. कीनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा महत्व भागवत में श्री शुकमुनि ने वैसा ही बताया है जैसा शरीर में पंच प्राणों का होता है (अर्थात् जैसे पंच-प्राण से रहित तन माटी है, निर्जीव है ठीक उसी प्रकार यह भागवत भी इस रासपंचाध्यायी के बिना निर्जीव है। इसके बिना इसका महत्व नगण्य हो जाता है) मेरे एक अत्यन्त रसिक (भगवद्भक्त) मित्र हैं उन्होंने मुझे इसे लिखने की आज्ञा दी, इसीलिए मैंने इस कथा को अपनी बुद्धि के अनुसार जनभाषा में लिखा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों में 'रहस्य' शब्द का प्रयोग अत्यन्त अर्थ-गाम्भीर्य-समन्वित है। जैसे किसी रहस्य के उद्घाटन के प्रति हमारी उत्सुकता मचलती, बलवती होती रहती है ठीक वैसे ही इस ग्रन्थ में रासपंचाध्यायी के लिए हमारे मन में जिज्ञासा बनी रहती है। रहस्य के उद्घाटनकर्त्ता के लिए किसी रहस्य का कितना महत्व और वह रहस्य उसके लिए कितना आनन्ददायक होता है यह अनुभूति-जन्य है। ठीक यही बात रासपंचाध्यायी के विषय में भी है।

(२) सामान्य तौर से मित्र कोई बात करने के लिए कहता है तो उसे हम सलाह या 'सम्मति' कहते हैं यह बात वर्तमान सभ्यता में पले व्यक्तियों की है। भारतीय जन अपने व्यवहार में कितने विनम्र थे इसका पता नन्ददासजी के इस भाव के लिए 'आज्ञा दीन्ही' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट प्रगट होता है।

(३) 'तातें भाषा कीन्ही' से नन्ददासजी के समय में ब्रजभाषा के व्यापक प्रचार का पता लगता है।

(४) 'जथामति' में जथा शब्द का प्रयोग तत्कालीन कवियों की निरभि-मानता की ओर संकेत करता है। तुलसीदासजी ने भी इतना विशुद्ध साहित्य देने पर भी उसकी प्रचुरता, श्रेष्ठता को ध्यान में ही कभी नहीं आने दिया और अपने निश्छल हृदयोद्गार प्रकट किए—

कवित विवेक एक नहि मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।।

आज का साहित्यकार कितना दरिद्र है कोई तुलना कर देखे तो दूध पानी का अन्तर स्पष्ट हो जाए।

(५) पंचप्राण—शरीर में पाँच प्रकार की वायु का होना माना गया है उन्हीं को पंच प्राण कहते हैं—१. प्राण, २. अपान, ३. व्यान, ४. समान, ५. उदान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(६) नन्ददासजी यदि अपने उन रसिक मित्र के विषय में भी कुछ परिचय देते तो अच्छा रहता।

(७) विशुद्ध ब्रजभाषा के दर्शन अब तक के वर्णन में इन्हीं छन्दों में हुए हैं।

श्रीवृन्दावन चिद्घन कछु छबि बरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥१७॥
जहँ नग खग मृग कुंज लता बीरुध तृन जेते।
नहिंन काल गुन-प्रभा सदा सोभित रहे तेते ॥१८॥

शब्दार्थ—काज=निमित्त, लिए या कारण। नग=पर्वत।

प्रसंग—कवि यहाँ श्रीकृष्ण की विहार-स्थली वृन्दाविपिन की अनुपम और अकथनीय शालिमा का वर्णन करता है।

व्याख्या—वृन्दावन के लिए चिद्घन श्रीकृष्ण की शोभा के साथ ही साथ (उनके विहार स्थल) वृन्दावन की शोभा का वर्णनं कर सकना सम्भव नहीं है। यह उन (यों तो चैतन्य है फिर भी) श्रीकृष्ण की सुन्दर लीलाओं के रसास्वादन के हेतु जड़ता को धारण किए हुए है।

यहाँ जितने भी पर्वत, पक्षी, पशु, लताएँ, वृक्ष, तृण और जितने भी कुंज हैं वे काल और गुण के प्रभाव से असंबद्ध रहते हैं। यही कारण है कि वे इतने सुशोभित रहते हैं।

विशेष—(१) वन को कवि ने चैतन्य दिखाकर सर्वत्र चैतन्य ब्रह्म की सत्ता को ही व्यंजित किया है और उसे कृष्ण की लीला भूमि भी बतलाया है। चैतन्य ब्रह्म लीलाओं का रसास्वादन चैतन्य रहकर नहीं किया जा सकता। रसास्वादन किसी भी प्रकार हो हमें पूर्ण तमन्य होने पर ही हो पाता है। और पूर्ण तमन्यता की स्थिति ही जड़ता की स्थिति है जहाँ हम अपना स्वत्व भूलकर निस्तब्ध हो देखते ही रह जाते हैं। बिहारी ने भी लिखा है—

अनबूड़े बूड़े तिरे········इत्यादि।

वैसे भी नन्ददास सुगुणभक्ति के उपासक थे इसलिए वे ज्ञान की बात करें यह सम्भव नहीं था। ब्रह्म के लिए भक्ति के मार्ग का प्रतिपादन अप्रत्यक्ष रूप मे यहाँ करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ कवि-संकल्प भी स्पष्ट हो जाता है।

(२) काव्यलिंग अलंकार है।

सकल जन्तु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम-क्रोध-मद-लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥१६॥
सब दिन रहत बसंत कृष्ण-अवलोकनि-लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा ॥२०॥

शब्दार्थ—सकल=समस्त। अविरुद्ध=विरोध भाव से रहित होकर। हरि=सिंह। अनुसरहीं=अनुसरण करते हैं, तात्पर्य जीवन-व्यापन करते हैं। जा=जिसकी।

प्रसंग—वृन्दावन में कृष्ण-लीलाओं का प्रभाव बताते हुए कवि कहता है कि यहाँ किसी भी जीव-जन्तु में आपस में विरोधी भावनाएँ नहीं हैं।

व्याख्या—जिस वृन्दावन में समस्त जन्तु और जीव अपना वैर-भाव भुलाकर अथवा निर्विरोध (विरोध भावना से रहित होकर) रहते हैं और जहाँ (इतना सौहार्द है कि) सिंह और हरिण एक ही साथ विचरण करते हैं और काम, क्रोध अहंकार तथा लोभ के विषैले भावों से रहित होकर अपना जीवन-व्यापन करते हैं या श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुसरण करते हैं।

श्रीकृष्ण के दर्शनों के लोभ से जहाँ सर्वदा वंसत ही बना रहता है सारा का सारा वन इसी कारण से उसकी ही शोभा से सुशोभित रहता है।

विशेष—(१) यहाँ तपोवन का-सा शान्त और सौहार्दपूर्ण वातावरण नन्ददासजी ने उपस्थित कर दिया है। संस्कृत कवियों में विशेषतः माघ, भास और कालिदास ने इसी प्रकार तपोवन का वतारवण चित्रित किया है। बिहारी इसी प्रकार के वातावरण का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥
—विहारी सतसई।

(२) तद्गुण और काव्यलिंग अलंकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूप चरन सेवत नित।
भ्रू बिलसति जु बिभूति जगत जगमगि रहि जित कित।।२१।।
श्री अनन्त महिमा अनन्त को वरनि सकै कवि।
संकरषन सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि।।२२।।

शब्दार्थ—भ्रू विलसत=भृकुटि विलास। विभूति=श्री, शोभा या सम्पत्ति। संकरषन=संकर्षण बलराम। सौं=से।

प्रसंग—वृन्दावन की अमित शोभा को अवर्णनीय बताते हुए कवि उसके विषय में बताता है कि स्वयं श्रीकृष्ण ने ही इसकी शोभा को बलराम की मुख-श्री से उपमित किया है।

व्याख्या—जिस लक्ष्मी के भृकुटि-विलास की सुषमा से संसार श्री जहाँ-तहाँ अवराजती फिरती है वही लक्ष्मी मूर्तिमान अर्थात् साकार होकर सदा अपने अनुपम सौन्दर्यशाली चरणों से इसमें विहार करती है और (इस प्रकार इस वृन्दावन की सेवा करती है) क्योंकि यह श्रीकृष्ण का प्रिय वन है। यही कारण है कि इस वृन्दावन की शोभा और महिमा दोनों ही अनन्त हैं। ऐसा कौन व्यक्ति है जो इसकी छवि-छटा का उचित वर्णन कर सके अर्थात् इसके सौन्दर्य का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है। इसे स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से बलराम की मुख-छवि की उपमा दी है।

विशेष—(१) पहले जो वृन्दावन का तपोवन सा वातावरण चित्रित किया है उसका कारण प्रस्तुत छन्दों में मिलता है। यहाँ स्वयं श्रीकृष्ण और रमा विहार करती हैं इसीलिए यहाँ अत्यन्त पवित्रता तथा विरोधहीनता है।

(२) यद्यपि वृन्दावन की प्राकृतिक छटा के वर्णन की कमी यहाँ हैं फिर भी धार्मिक, पवित्र वातावरण यहाँ पूर्णतः विद्यमान है। नन्ददास का अभिप्रेत भी यही है।

(३) काव्यलिंग अलंकार है।

देवन में श्रीरमारमन नारायन प्रभु जस।
बन में वृन्दाबन सुदेस सब दिन सोभित अस।।२३।।
या बन की वर-बानिक या बन हीं बनि आवै।
सेस महेस सुरेस गनेस न पारहिं पावै।।२४।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—जस=जिस प्रकार। अस=उसी प्रकार या इस प्रकार से। बर=श्रेष्ठ। बानक=बनक, रचना, बनावट या शोभा से तात्पर्य लिया जा सकता हैं। बनि आवै=फबती है। सेस=शेष नाग। महेस=महेश, शिवजी। सुरेस=देवेन्द्र अर्थात यह इन्द्र। गणेसहु=गणेश जी।

प्रसंग—वृन्दावन की महत्ता और छटा का वर्णन करते हुए कवि उसे वनों में वही स्थान देता है जो देवताओं में विष्णु का है अर्थात् यह सर्वोपरि वन है। वह कहना चहाना है—

व्याख्या—जिस प्रकार देवताओं में लक्ष्मीपति विष्णु का स्थान प्रमुख और प्रथम है यह वृन्दावन भी समस्त वनों में उसी प्रकार सुशोभित होता है अर्थात् वृन्दावन ही सर्वश्रेष्ठ वन है। इस वन भी बनावट इसी को फबती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस वन की जैसी बनावट किसी अन्य वन की नहीं है। इसकी बनावट या रचना का पार स्वयं शेष, शिव, इंद्र और गणेश भी नहीं पा सकते।

विशेष—(१) विष्णु संसार का पालन करनेवाले माने जाते हैं। इसीलिए वृन्दावन में जो कवि ने सौहार्दवाली बात कही है उसकी और भी पुष्टि होती है। इस वृन्दावन में भी उसी प्रकार विध्वसंक या संहारकारी आचरण असंभव हैं।

२. उदाहरण और लोकोक्ति के साथ अतिशयोक्ति अलंकार है।

जह जेतिक द्रुम जाति कल्पतरु सम सब लायक।
चिंतामनि सम भूमि सकल चिंतित फल-दायक ॥२५॥
तिय मधि इक जु कलपतरु लगि रहि जगमग जोती।
पत्र मूल फल फूल संकल हीरा मनि मोती ॥२६॥

शब्दार्थ—जेतिक=जितने। मधि=बीच में। तिनमधि=उनमें।

प्रसंग—वृन्दावन के वृक्षों के फल और उनके सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

व्याख्या—जिस वृन्दावन में जहाँ भी और जितने भी वृक्ष दिखाई देते हैं (खड़े दिखाई देते हैं) वे सब के सब वृक्ष सभी प्रकार से कल्पतरु के समान हैं। तात्पर्य सभी में कल्पतरु जैसी क्षमताएँ विद्यमान हैं। समस्त चिंचित व्यक्तियों की चिंताओं को निवारण कर उन्हें समुचित सुन्दर फल प्रदान करनेवाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिंतामणि के समान यहाँ की भूमि है।

उन्हीं वृक्षों के बीच में एक वृक्ष तो बिल्कुल ही कल्पवृक्ष के समान है। उसी की भाँति उसकी आभा जगमगा रही है। उसके पत्ते, जड़, और फल-फूल सभी कुछ हीरा, मणियों और मोतियों के समान हैं।

विशेष—(१) कल्पवृक्ष मानवों को ही क्या जो भी उसके नीचे बैठकर जो कोई भी इच्छा वह करता है उसे पूरा करता है। उसे मनोरथ-दायक वृक्ष भी कहा जाता है। इसी प्रकार के यहाँ के वृक्ष हैं जो मनुष्यों को चार प्रकार के फल प्रदान करते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

(२) जेतिक में 'क' प्रत्यय लगा हुआ है—'स्वार्थे कः' के आधार पर क प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है जैसे पुत्रक, केतिक इत्यादि। ब्रजभाषा में इस प्रत्यय से कुछ विशेष बल पड़ जाता है। यह वस्तुतः भी का या ही का अर्थ-द्योतन करता है जैसे जेतिक=जितने भी। केतिक=कितने ही।

(३) 'पंचमूल फल-फूल' में अक्रमत्व दोष है।

(४) उपमा अलंकार है।

तिन मधि तिन के गंध लुब्ध अस गान करत अलि।
बर किन्नर गंधर्व अपछरा तिन पर करि बलि ॥२७॥
अमृत फुहीं सुख गुही अति सुही परति रहति नित।
रास रसिक सुन्दर पिया को स्रम दूर करन हित ॥२८॥

शब्दार्थ—गंध-लुब्ध=गंध पर मोहित होकर। अलि=भौंरे। अस=इस प्रकार। फुहीं=फुहारें। गुही=अगुम्फित=समाविष्ट, ग्रथित या भरी हुई। सुही=सुशोभित। किन्नर=अश्व मुखवाले देवगायक। गंधर्व=एक प्रकार के दूसरे देवगायकों की एक जाति विशेष। अपछरा=अप्सरा। इन्हें सुरपुर की वेश्याएँ माना जाता है जो बहुत ही सुन्दर और नृत्य में अत्यन्त प्रवीण होती हैं।

प्रसंग—वृक्षों पर खिले पुष्पों की गंध से लुब्ध भ्रमरावलियों के कल-गुंजन के विषय में नन्ददासजी लिखते हैं कि उनपर गंधर्व और किन्नर आदि भी बलि जाते हैं—

व्याख्या—उन वृक्षों में उनपर खिले पुष्पों की गन्ध के प्रति लुब्ध भ्रमरगण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार गायन करते हैं कि उनके इस गायन की मधुर स्वर-लहरी पर स्वयं गंधर्व किन्नर और अप्सराएँ बलि जाति हैं। वे भौंरे वहाँ इसलिए जाते हैं कि उनसे (वृक्षों से) सुख में गुँथो हुई अमृत की फुहारें बरसती रहती हैं, इसलिए कि रास के रसिक सुन्दर श्रीकृष्ण के श्रम-शैथिल्य को दूर कर सकें।

विशेष—(१) वृक्षों के नीचे पहुँचते ही अमृत-बिन्दुओं से तनमन सभी सरस हो जाते हैं और इस तथ्य के अतिरिक्त कवि संगीत माधुरी का वर्णन करके कवि अपने पाठकों को काव्य संगीत की ओर आकृष्ट करना चाह रहा है।

(२) व्यतिरेक और काव्यलिंग के अतिरिक्त अनुप्रास की सुन्दर छटा है।

वा सुर तरु महँ अवर एक अद्‌भुत छवि छाजै।
साखा-दल-फल फूलनि हरि प्रतिबिंब बिराजै ॥२९॥
ता पर कोमल कनक-भूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत सब प्रतिबिंब मनों घर महँ दुसरों बन ॥३०॥

शब्दार्थ—अवर=और या दूसरी। अउर लेने पर और तथा अपर लेने पर दूसरी। घर महँ=पृथ्वी में।

प्रसंग—कवि वृन्दावन की ही छवि का अत्यन्त रमणीय वर्णन एक नई छवि के साथ प्रस्तुत करता हैं जो वहाँ के वृक्षों में के उस कल्पतरु के समान वृक्ष और वहाँ की पृथ्वी से सम्बन्धित है—

व्याख्या—उस (कल्पतरु के समान) वृक्ष में एक और भी शोभा विराजमान है और वह यह है कि उसकी शाखाओं, पत्तियों, फूलों और फलों में श्रीकृष्ण का प्रतिबिंब दिखाई देता है (इतना ही नहीं इससे भी अधिक मोहकता वहाँ की पृथ्वी की ही जो) और उस पर भी वहाँ की कनक समान दीप्तिमान कोमल पृथ्वी मन को और भी अधिक मोहती है। क्योंकि उसमें सारा का सारा वन प्रतिबिंबित दिखाई देता है और ऐसा लगता है मानो पृथ्वी के अन्दर कोई दूसरा वन हो।

विशेष—(१) व्यापक व्याप्य का सान्निध्य अत्यन्त सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया गया है।

(२) भाषा में भाव-गाम्भीर्य, सजीवता और सार्थकता की जितनी भी सराहना की जाय कम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) प्राकृतिक वर्णन के माध्यम से नन्ददासजी ने अपने सिद्धान्तों और मानसिक भावनाओं को अत्यन्त कौशल के साथ प्रस्तुत किया है।

(४) सारा वृन्दावन—क्या जड़ क्या चेतन—कृष्णमय हो गया है यही नन्द-दासजी का अभीष्ट है। वे इसी के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि वृन्दावन में जाते ही भगवद्भक्ति की भावनाएँ मन में उत्पन्न होती हैं।

(५) उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार हैं।

(६) 'फल-फूल' में अक्रमत्व दोष है जो इसलिए क्षम्य माना जा सकता है कि छन्द के आग्रह से ही लाया गया है दूसरे नन्ददास प्रथमतः भक्त थे और बाद में कवि। भक्त के नाते वे अपनी भावनाओं को स्पष्टतः और पूर्णतः रसात्मकता के साथ अभिव्यक्त कर ही गए हैं।

तहँ इक मनि मय अंक चित्र को संख सुभग अति।
तापर षोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥३१॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तहँ राजत ब्रजराज-कुँवर-बर रसिक पुरंदर ॥३२॥

शब्दार्थ—षोडस-दल सरोज=सोलह पत्रोंवाला कमल। चक्राकृति=चक्र की आकृति, गोल आकृति। कर्णिका=कमल का मध्य भाग। कन्दर=कान्दरा, गुहा, गुफा। पुरन्दर=इन्द्र।

प्रसंग—श्रीकृष्णजी इस वृन्दावन में जहाँ अवस्थित हैं उस स्थल का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—वहीं एक मणि-जटित सुन्दर शंख की-सी चित्राकृति का सोलह पत्रोंवाला कमलासन है जो अत्यन्त ही सुन्दर और दीप्त है। उसीपर मधुपों के लिए कमनीय सुख की कन्दरा के समान सुन्दर कर्णिका बनी हुई है। उसी पर रसिकेन्द्र कुंवर ब्रजराज श्रीकृष्णजी विराजमान हैं।

विशेष—उपमालंकार है।

श्रीकृष्ण की शोभा

निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस ॥
सुन्दर नन्द कुँवर उर पर सोई लागत उडु जस ॥३३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोहन अद्‌भुत रूप कहि न आवति छवि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ॥३४॥

शब्दार्थ—विभाकर=चन्द्रमा (यों तो विभाकर का तात्पर्य सूर्य से भी लिया जा सकता है परन्तु यहाँ हमने चन्द्रमा इसलिए लिया है कि विभावरी से इसका सम्बन्ध है और विभावरी रात्रि को कहते हैं। चन्द्रमा भी रात्रि को ही उदित होता है। फिर कौस्तुभमणि भी शीतल ही होती है इसीलिए भी उसे चन्द्रमा से उपमित करना उचित ही रहेगा) निविड़=घना। अंड=ब्रह्माण्ड। उर=हृदय। उडु=तारा।

प्रसंग— कृष्ण के वक्ष पर पड़ी अपूर्व कान्ति से सम्पन्न कौस्तुभमणि तथा उनके मुख-मंडल की असीम आभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—चन्द्रमा की किरणों की कांति को भी समाप्त करती हुई सुन्दर कौस्तुभमणि श्रीकृष्ण के सुन्दर वक्ष पर इस प्रकार लग रही है जैसे कोई तारा हो और श्रीकृष्ण के अद्‌भुत सौन्दर्य की छवि तो वर्णित ही नहीं की जा सकती कारण कि उसमें असीम आभा है जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहनेवाली है। सही बात तो यह है कि वह तेजोमय ब्रह्म भी उसी की आभा है।

विशेष—(१) मोहन शब्द यहाँ शृंगार या प्रेम सूचक है। प्रथमतः कवि भगवान के हृदय का ही वर्णन करता है क्योंकि वहीं तो प्रेम-रस की अवस्थिति होती है और फिर कवि का उधर ही सर्वप्रथम आकर्षित होना भी स्वाभाविक ही था क्योंकि वहाँ अद्वितीय कांतिवाली कौस्तुभमणि जो विद्यमान थी।

(२) ब्रह्म को ज्योति-स्वरूप माना गया है—

सोऽहमस्मि इति तत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोई परम प्रचण्डा॥

और गीता में कृष्ण ने स्वयं को ब्रह्म ही बताया है। और ज्योति-स्वरूप ही माना है।

(३) प्रतीप और उपमा अलंकार हैं।

परमातम परब्रह्म सबन के अन्तरजामी।
नारायण भगवान धरम करि सब के स्वामी ॥३५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाल कुमार पुगंड धरम आशक्त जु ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन ॥३६॥

शब्दार्थ—धरमकर=धर्मादिष्ट आचरण करनेवाले या धर्मानुसार व्यवहार करनेवाले। या धर्म ही है हाथ जिनके। कुमार=५ वर्ष से १० वर्ष तक की आयु वाले। पुगंड=१० वर्ष से १६ वर्ष की आयु वाले।

प्रसंग—श्रीकृष्ण की विशेषताएँ या गुणों का वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है—

व्याख्या—परमात्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण सभी के हृदय में रहनेवाले हैं। वे ही नारायण भगवान हैं जिनके धर्म के ही हाथ हैं या जो धर्मानुकूल ही व्यवहार करनेवाले हैं और या भाव-जगत दिष्ट वस्तुएं हैं उन सभी के स्वामी हैं—पालनकर्ता हैं। जिनका शरीर अत्यन्त कोमल है ऐसे वे धर्मवान किशोरावस्था-वाले श्रीकृष्ण अपनी वालकुमार और पौगण्ड अवस्थाओं में अपनी मोहक क्रियाओं से सभी का मन मोहते हैं।

विशेष—(१) ब्रह्म का अवतार धर्म की रक्षा के लिए ही होता है अतः उसका धर्माचरण स्वाभाविक है और स्वतः सिद्ध है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(२) ब्रह्मावतार स्वरूप कृष्ण की ४ अवस्थाएं बताई हैं—बाल, कुमार, पौगण्ड और किशोर। कारण कि इन्हीं अवस्थाओं में कृष्ण-भक्ति प्रखरता से बहती है। वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण की इन्हीं अवस्थाओं में उनके रूप-सौन्दर्य, शीलशक्ति, प्रेम-भक्ति तथा रसिकता और नायकत्व का संकीर्तन किया जाता रहा है। समस्त कृष्ण-काव्य इन्हीं अवस्थाओं की लीलाओं से भरा हुआ है।

(३) 'नित्य किसोर' पद भी अत्यन्त गंभीर, व्यंजक है। वे यह बताना चाहते हैं कि कृष्ण नित्य ही किसोर रहते हैं। उन्हें अवस्था और गुण यानी काल और गुण परिव्याप्त नहीं होते। 'मोहक' पद से शृंगार का प्राधान्य झलकता है।

(४) अनुप्रास अलंकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ ।
याही तें बैकुंठ-बिभव कुंठित लागत तहँ ।।३७।।

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—इस प्रकार के अद्भुत (गुणों से सम्पन्न) लाल गोपाल जहाँ सर्वदा रहते हैं अतः वहाँ की शोभा के समक्ष स्वयं वैकुण्ठ भी कुण्ठित लगता है ।

विशेष—प्रतीप अलंकार साथ ही काव्यलिंग भी है ।

शरद रजनी वर्णन

जदपि सहज माधुरी बिपिन सब दिन सुखदाई ।
तदपि रँगीली सरद समय मिलि अति छबि पाई ।।३८।।
ज्यौं अमोल नग जगमगाय सुन्दर झराय सँग ।
रूपवंत गुनवंत भूरि भूषण भूषित अँग ।।३९।।

शब्दार्थ—भूषन भूषित अंग=आभूषणों से सुशोभित अंग या शरीर ।

प्रसंग—वन सुन्दर तो है ही परन्तु शरद की छटा के साथ घुलकर और भी अधिक सुहावना बन जाता है । कवि प्रस्तुत छन्दों में यही कहना चाहता है—

व्याख्या—यद्यपि सहज (स्वाभाविक) मधुरता से परिपूर्ण (सौन्दर्य वाला) वृन्दावन सभी दिन सुख प्रदान करने वाला रहता है फिर भी रँगीली शरद ऋतु के समय वह उसके साथ मिलकर और भी छविमान हो उठता है ।

जिस प्रकार अमूल्य नग (हीरा) सुन्दर जड़ाव के साथ रूपवान सुन्दर गुणों के साथ और आभूषण सुन्दर अंगों के साथ मिलकर अत्यन्त छवि पाते हैं (वैसे ही यह वृन्दावन भी शरद ऋतु के साथ मिलकर अधिक छविमान हो उठता है)

विशेष—(१) शरद ऋतु का ही कुछ ऐसा प्रभाव होता है । बिहारी लिखते हैं—

"अरुनसरोरुह कर चरन, दृग खजन मुखचन्द ।
समै आइ सुन्दरि सरद काहि न करत अनन्द ।।"

(२) नन्ददासजी आगे रास का वर्णन करने के लिए शरद ऋतु के वर्णन को प्रस्तुत कर उसकी भूमिका बाँध रहे हैं । रास वस्तुतः शरद में ही रचा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। गीतगोविन्द में जयदेव और हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास में इसका विस्तृत और रोचक तथा सरस वर्णन प्रस्तुत किया है।

(३) मालोपमालंकार है।

रजनी मुख सुख देत ललित मुकुलित जु मालती।
ज्यों नव जोवन पाइ लसति गुनवती बाल ती ॥४०॥
नव फूलनि सों फूलि फूलि अस लगति लुनाई।
सरद छबीली छपा हँसत छबि सों मनु आई ॥४१॥

शब्दार्थ—रजनी-मुख=चन्द्रमा या रात्रि का प्रथम प्रहर। ती=तिय-स्त्री। लुनाई=लावण्य। छपा=क्षपा, रात्रि।

प्रसंग—शरद की रात्रि का मोहक और सरस वर्णन करते हुए कवि नन्ददास-जी लिखते हैं—

व्याख्या—चन्द्रमा से सुख प्रदान करती हुई, शरद ऋतु की छबीली रात्रि जब आई तभी मानो मालती मुकुलित हुई। वह उस समय ठीक वैसी ही लग रही है जिस प्रकार कोई गुणवती किशोरी बाला नूतन यौवन प्राप्त करने के बाद लसती है। उसी शरद ऋतु के कारण नवीन पुष्पों के फूलने से प्रफुल्लित वन की शोभा भी लगती है।

विशेष—(१) रसोद्रेक, भाव जाग्रति, मनोवृत्ति की रागात्मिका की आकर्षिणी उत्पत्ति देखने योग्य हैं।

(२) ऐसा ही शरद ऋतु का वर्णन भागवत और सूर में भी मिलता है।

(३) उत्प्रेक्षा एवं उपमा अलंकार हैं।

तही छिन उडुराज उदित रस-रास-सहायक।
कुमकुम-मंडित प्रिया वदन जनु नागर नायक ॥४२॥
कोमल किरन अरुनिमा बन मैं व्यापि रही अस।
मनसिज खेल्यो फागि घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल जस ॥४३॥

शब्दार्थ—ताही छिन=उसी क्षण या उसी समय। उडुराज=तारों का स्वामी अर्थात् चन्द्रमा। कुमकुम=सिन्दूर।

प्रसंग—रसोत्पादक चन्द्रमा के उदित होने की बात प्रस्तुत पंक्तियों में उत्प्रे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षाओं के माध्यम से कही गई है—

व्याख्या—उसी समय शृंगार में उद्दीपन का कार्य करनेवाला चन्द्रमा उदित हुआ मानो प्रियतमा (रात्रि) के मुख पर कुमकुम मलकर उसके साथ ही नायक (चन्द्रमा) उदित हुआ हो। मंजुल मयंक या उज्ज्वल चन्द्रमा की अरुणाभ रश्मियाँ समस्त वृन्दावन में इस प्रकार व्याप्त हो गईं मानो कामदेव ने होली खेली हो, उसी के द्वारा बिखेरे गए गुलाल की लाल रज बिखर-बिखरकर फैल गई हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत दोनों ही उत्प्रेक्षाएँ नायक-नायिका के सप्रेम सम्मिलन की पूर्व सूचना दे रही हैं।

(२) उत्प्रेक्षा अलंकार हैं जिनमें से पहली उत्प्रेक्षा का आधार भागवत की ही इस प्रसंग की एक उत्प्रेक्षा है फिर भी नन्ददासजी का उसे प्रस्तुत करने का ढंग मौलिक है।

फटिक छरी सी किरन कुंज-रंध्रनि जब आई।
मानों बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ॥४४॥
मंद-मंद चलि चारु चंद्रिका अस छबि पाई।
उझकति हैं प्रिय रमा-रमन कौं मनु तक आई ॥४५॥

शब्दार्थ—फटिक छरी-सी=स्फटिक मणि की छटा-सी। रंध्रनि=छिद्रों में। यहाँ पंक्तियों के बीच के शून्य स्थान से तात्पर्य है। बितान=शमियाना। तनाई=डोरियाँ।

प्रसंग—कुंजों में प्रविष्ट होती हुई चन्द्रमा की रश्मियों का वर्णन कवि उत्प्रेक्षा देता हुआ करता है—

व्याख्या—स्फटिक मणि की छटा-सा उज्ज्वल चन्द्र-किरणें जब कुंजों के रंध्रों में होकर अन्दर प्रविष्ट हुईं तो ऐसा लगा मानो किसी रमणीक स्थान पर तने हुए (आकाश रूपी) शामियाने की डोरियाँ हों। सुन्दर चाँदनी ने मंद-मंद गति से कुंजों के आँगन में चलते समय ऐसी शोभा प्राप्त की मानो वे श्रीकृष्ण के रमण के कौतुक को देखने के लिए आई हैं इसीलिए उझक-उझककर देख रही हैं।

विशेष—(१) 'रमा-रमण-पिय कौतुक' से आगे वर्णित राधा-कृष्ण की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीला-क्रीड़ा का संकेत किया गया है।

(२) किसी भी कौतुक को देखने के लिए मंद-मंद गति से चलना ही आवश्यक होता है क्योंकि तेज चलने पर हम सम्यग् अपना अभिष्ट सिद्ध कर ही नहीं सकते। इसीलिए कवि ने चन्द्रमा को धीमी गति से चलता हुआ बताया है।

(३) उत्प्रेक्षा और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार हैं।

मुरली वर्णन

तब लीनी कर-कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुर ली ॥४६॥
जाकी धुन तें अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर ॥४७॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—कवि प्रस्तुत पंक्तियों में मुरली की क्षमताओं का वर्णन करता हुआ कहता है—

व्याख्या—इसी सुन्दर और सुहावने समय में श्रीकृष्ण ने अपने हाथों में योगमाया-सी वह मुरली ली जो असम्भव घटनाओं को भी सम्भव बनाकर घटित कर देने की क्षमता से सम्पन्न चतुर तथा कृष्ण के अधर रस से आपूरित थी। जिसकी ध्वनि से ही आगम-निगमों के अत्यन्त पुष्ट सिद्धान्त प्रकट हुए हैं तथा जो नाद-ब्रह्म की जननी और समस्त सुखों के सागर की भाँति है।

विशेष—(१) यहाँ योगमाया शब्द श्लिष्ट है और साथ ही एक अर्थ-गाम्भीर्य लिए हुए है। इसके दो अर्थ यहाँ ध्वनित होते हैं—(१) योग-शक्ति से सम्पन्न (ज्ञान-योग से तात्पर्य है) (२) संयोग—प्रेमी-प्रेमिका, भक्त-भगवान, आत्मा और परमात्मा के सुन्दर संयोग से तात्पर्य है। इसी श्लेष के आधार पर भगवान श्रीकृष्ण के लीलापुरुषोत्तम रूप के अतिरिक्त उनका योगी कृष्ण वाला रूप भी ध्वनित हुआ है। वस्तुतः श्रीकृष्ण सगुण-निर्गुण, सविकार-निर्विकार, माया-सहित-मायारहित, रागी-विरागी और अद्भुत लीला करनेवाले रहे हैं। उनके ये ही दोनों रूप यहाँ संकेतित हैं। योगमाया से ऋद्धि-सिद्धि और नवनिधियों की प्राप्ति होती है जिनके द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव और घटित होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ एक बात और भी ध्वनित हो रही है वह यह कि गोपियाँ कृष्ण के ज्ञान-योगी स्वरूप को स्वीकारती तो हैं परन्तु उसमें उन्हें अपना श्रेय दिखाई नहीं देता इसीलिए वे रसमय भक्तिमार्ग को ही स्वीकारती हैं। साथ ही उसे चरितार्थ भी करती हैं।

(२) विरोधाभास और रूपक का आभास है।

नागर नवल किसोर कान्ह कल-गान कियो अस।
बाम बिलोचन बालन को मन हरन होई जस ॥४८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—श्रीकृष्ण मुरली वादन करने लगे—

व्याख्या—फिर चतुर नन्दकिशोर ने वेणुवादन कर इस प्रकार का गान फूंका कि बंकिम-नयनों वाली गोप-बालाओं का मन हरण हो जाय।

विशेष—अनुप्रास अलंकार है।

ब्रज-बालाओं की विरह दशा

सुनत चलीं ब्रजबधू गीत-धुनि को मारग गहि।
भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कितहूं अटकीं नहिं ॥४९॥
नाद अमृत को पंथ रँगीलो सूछम भारी।
तिहि ब्रज तिय भले चलीं आन कोउ नहिं अधिकारी ॥५०॥

शब्दार्थ—मारग=मार्ग, पथ, रास्ता। गहि=ग्रहण कर। आन=अन्य, दूसरा।

प्रसंग—ब्रज-बालाएँ कृष्ण की मुरली की उस ध्वनि को सुनकर निधरक हो उसी दिशा में चल दीं। गोपियाँ ही इसकी अधिकारिणी थीं अन्य कोई नहीं—

व्याख्या—उस मुरली की ध्वनि को सुनकर समस्त ब्रज-वधुएँ उसी ध्वनि के मार्ग को ग्रहण कर, तात्पर्य जिधर से मुरली की ध्वनि आ रही थी उसी दिशा में चल दीं। मार्ग में चलते समय वे किसी भी महल, भीति (दीवार) या वृक्षों और कुंजों के समूह में कहीं भी नहीं अटकीं। कहने का तात्पर्य यह है कि उन गोपियों के मार्ग में न तो संसार ही बाधा डाल सका (लोकलाज से अर्थ है)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और न परिजनों का भय ही उन्हें रोक सका और न अन्य कोई प्राकृतिक सौंदर्य का आकर्षण ही उनके पथ में बाधा बनकर आया।

शब्दामृत का मार्ग अत्यन्त रँगीला और बहुत ही सूक्ष्म है इसीलिए उसपर वे व्रज-युवतियाँ भली-भाँति चल सकीं क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई उसका अधिकारी ही नहीं है।

विशेष—(१) मुरली-वादन का ऐसा ही प्रभाव-वर्णन अयोध्यासिंह उपाध्याय ने हिन्दी में और जयदेव ने गीतगोविन्द में तथा भागवतकार ने किया है संस्कृत में। बिहारी का एक दोहा देखिए; सचमुच ही मुरली की ध्वनि इतनी मधुर थी कि उसके प्रेमी को कोई नहीं रोक सकता था—

किती न गोकुल कुल-वधू किहिं न काहि सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली सुनि मुरली धुनि लीन ॥

(२) लोकोक्ति और अनुप्रास अलंकार हैं।

जे रहि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर बस।
पुण्य पाप प्रारब्ध सँच्यौ तन नाँहिन पच्यौ रस ॥५१॥
परम दुसह श्रीकृष्ण-बिरह-दुख व्याप्यो तिन मैं।
कोटि बरस लग नरक भोग अघ भुगते छिन मैं ॥५२॥

शब्दार्थ—गुनमय=प्राकृतिक गुण या विकार के वशीभूत। पच्यौ=पचा।

प्रसंग—कुछ गोपियाँ विकारपूर्ण शरीर के कारण वहाँ नहीं जा सकीं। उन्हें कृष्ण का भारी विरह सताने लगा—

व्याख्या—जो गोपियाँ अपने विकारयुक्त शरीर के कारण घर पर ही रह गई थीं, वहाँ अन्य गोपियों के साथ जा नहीं पाई थीं वे अत्यन्त अधीर हो उठीं। उनके प्रारब्धकृत पुण्य-पाप से रचे हुए शरीरों में प्रेम-रस का संचय नहीं हो पाया। उनके शरीर और हृदय दोनों में ही श्रीकृष्ण के वियोगजन्य विरह का प्रबल ताप व्याप्त हो गया। उन्होंने एक ही क्षण में इतने कष्ट सहे जितने कि कोई पापी पुरुष करोंड़ो वर्ष नर्क में भोग सकता है।

विशेष—(१) जब शरीर प्रकृति विकारजन्य माया के वशीभूत और सत्य प्रेम को पहचानने की क्षमता से रहित होता है तो पूर्ण प्रेम को प्राप्त नहीं कर पाता। वह अपने शरीर और मन के प्रारब्धानुसार पूर्वलब्ध पापों में कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रौर जोड़ लेता है इसीलिए उसे कष्ट भोगना पड़ता है। ऐसे लोग संशयात्मा होते हैं। सोचते हैं इस प्रेम में प्रवृत्त हों या न हों इसीलिए उनका विनाश ग्रवश्यंभावी होता है—

'संशयात्मा विनश्यति'

(२) भागवत ग्रौर सूर के ग्रनुसार केवल एक ही गोपी घर के ग्रन्दर रुकी रही थी परन्तु यहाँ नन्ददासजी ने कई गोपियों को रोक दिया है, इसीलिए क्रिया ग्रौर कर्त्ता दोनों ही बहुवचनान्त दिए गए हैं।

(३) स्वभावोक्ति।

जिय पिय को धरि ध्यान तनिक ग्रालिंगन किय जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छनि कीने मंगल सब ॥५३॥
इतर धातु पाहनहिं परसि कंचन ह्वै सोहै।
नंद सुग्रन सो परम-प्रेम इह ग्रचरज को है ॥५४॥

शब्दार्थ—ग्रालिंगन=परिरंभण। पाषाण=पारस पत्थर।

प्रसंग—गोपियों ने ग्रपने ध्यान में ही एक ही क्षण में कृष्ण के ग्रालिंगन सुख के माध्यम से करोड़ों स्वर्गों का सुख प्राप्त कर लिया—

व्याख्या—ग्रपने हृदय में प्रियतम का स्मरण कर जब गोपियों ने तनिक-सा ही ग्रालिंगन किया तो उन्होंने एक ही पल में करोड़ों स्वर्गों से मिलनेवाला सुख प्राप्त कर उसका उपभोग कर लिया ग्रौर ग्रानंद को प्राप्त हुई। जैसे—लोहा जैसी दूसरी धातु पारस पत्थर का स्पर्श करते ही सोना बनकर सुशोभित होती है वैसे ही हम गोपियों ने भी (घर पर रह जानेवाली गोपियों से तात्पर्य है) यदि एक ही क्षण में श्री कृष्ण के परम प्रेम को प्राप्त कर लिया तो इसमें ग्राश्चर्य ही क्या है? ग्रर्थात् इसमें ग्राश्चर्य की कोई भी बात नहीं। यह तो स्वतःसिद्ध ग्रौर सहज बात है।

विशेष—(१) यहाँ योग-ध्यान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। श्रीकृष्ण के विषय में लिखा है—

हरि कौं भजै सो हरि करि होई।

गीता में भी श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है कि जो मुझे भजता है वह मुझे ही प्राप्त हो जाता है।

(२) काकुवक्रोक्ति ग्रौर उदाहरण ग्रलंकार हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेउ पुनि तिहिं मग चलीं रंगीली तज गृह संगम।
जनु पिंजरनि तें उड़े छूटे नव प्रेम बिहंगम ।।५५।।
सावन-सरित न रुकै करै जो जतन कोउ अति।
कृष्ण गहे जिनको मन ते क्यों रुकहिं अगम गति ।।५६।।

शब्दार्थ—तेउ=वे भी। पुनि=तदनन्तर, फिर, उसके बाद। शेष सरल है।

प्रसंग—फिर कृष्ण से अलग घराने में रहनेवाली गोपियाँ भी उसी मार्ग पर चल दीं और किसीके भी रोकने से नहीं रुकीं—

व्याख्या—फिर वे (घरों में रह जानेवाली गोपियाँ) भी उसी मार्ग का अनुसरण करती हुई चलीं (जिस पर अन्य गोपियाँ गईं थीं या जिधर से मुरली ध्वनि आ रही थी) उसी प्रकार जिस प्रकार कि पिंजड़ों से छूटे हुए पक्षी वन-प्रान्तर की ओर जाते हैं। उसी प्रकार इन गोपियों को भी अपने-अपने घरों के प्रति कोई मोह नहीं रह गया था जैसे पिंजड़े से मुक्त हुए पक्षियों को पिंजड़े के प्रति कोई लगाव नहीं रह जाता।

कोई भी कितना भी यत्न कर ले फिर भी श्रावण मास की बहती हुई नदी रुकती नहीं उसी प्रकार जिन गोपियों का मन कृष्ण अपने साथ ले गए थे वे भी भला क्यों लोक-रीति और लज्जा-भयादि के रोके रुकतीं; अर्थात् वे किसी भी कारण से रुक नहीं सकती थीं। इसलिए उन्मुक्त होकर कृष्ण-मिलन का औत्सुक्य तथा हर्ष से परिपूर्ण हृदय होकर घरों से चलीं तो फिर रु[illegible] ही नहीं।

विशेष—(१) तुलनात्मक भाव देखिए—

प्रेमापूरित हृदय जनों को लोक-रीति भय लज्जा।
कब-कब रोक सकीं हैं कोई भले कहे रुक मत जा ।।
प्रेम पंथ पर चलने वाले रुके नहीं रोके भी।
प्रिय धन को पाया है जो भी था सब कुछ खोके भी।।

(२) काकु वक्रोक्ति अलंकार है। साथ ही अर्थान्तरन्यास भी है।

सुद्ध जोति-मय रूप पाँच भौतिक तें न्यारी।
तिनहि कहा कोउ गहै जोति सी जगत उज्यारी ।।५७।।
जदपि कहूँ के कहूँ वधुनि आभरन बनाए।
हरि पिय पै अनुसरत जहीं के तहीं चले आए ।।५८।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ जल्दी में और बाँसुरी सुनकर अपनी सुध-बुध खो बैठने के कारण आभूषणों को यथास्थान नहीं पहिन पाई थीं, परन्तु कृष्ण के अनुसरण से वे यथास्थान आ गए थे—

व्याख्या—ये समस्त गोपियाँ शुद्ध ज्योति-स्वरूप थीं और पंचभौतिकों से अलग थीं; इसीलिए इनको कोई क्या रोक सकता था। ये तो अपनी ज्योति से समस्त संसार को भी उज्वल करनेवाली थीं इसीलिए इन्हें कोई क्या रोक सकता था।

यद्यपि इन गोप-वधुओं ने आत्म-विस्मृति के कारण आभूषणों को अपने अगों में यथास्थान नहीं पहिन पाया था, फिर भी वे सबके सब आभूषण प्रियतम श्रीकृष्ण का अनुसरणक रते ही जहाँ आने चाहिए थे वहाँ खिसककर आ गए। कहने का तापर्य यह है कि यथास्थान हो गए।

विशेष—(१) 'वधुनि' शब्द परकीयता का सा आभास होता है परन्तु हम पहले ही लिख चुके हैं कि ये परम ज्योति स्वरूप थीं। तात्पर्य प्रकृति थीं और श्रीकृष्ण पुरुष अतः अनौचित्य का खण्डन हो जाता है।

(२) आभरणों को यथास्थान न पहनने की बात भागवत और सूरसागर में भी दिखाई गई हैं।

(३) काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

राजा परीक्षित का प्रश्न

परम भागवत रतन रसिक जु परीक्षित राजा।
प्रश्न कर्यो रस पुष्ट करन निज सुख के काजा ॥५९॥
परम धरम को पात्र जानि जग को हितकारी।
उदर धरी में करी कान्ह जाकी रखवारी ॥६०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—राजा परीक्षत ने प्रश्न पूछा—

व्याख्या—परम ग्रन्थ भागवत के रसिक-रत्न राजा परीक्षित ने अपने मन में स्पष्ट हो रहे रस की पुष्टि करने के लिए और सुख प्राप्त करने के लिए प्रश्न किया। ये वे ही परीक्षित राजा थे जिन्हें परम धरम का पात्र और संसार के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हित को करनेवाला जानकर उदर रूपी दरी में रखकर जिसकी रक्षा स्वयं श्री-कृष्ण ने की थी।

विशेष—रूपक अलंकार है।

जाकों सुन्दर श्याम-कथा छिन-छिन नइ लागै।
ज्यौं लंपट पर-जुवति-बात मुनि अति अनुरागै ॥६१॥
हो मुनि क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि।
जानि भजे कमनीय कान्ह नहिं ब्रह्म-भाव करि ॥६२॥

शब्दार्थ—जाकों=जिसको, जिसे। पर-जुवति=पराई स्त्री।

प्रसंग—परीक्षित के विषय में ही आगे कहते हुए परीक्षित के प्रश्न को कवि बताता है कि उनका क्या प्रश्न था—

व्याख्या—जिसे सुन्दर श्रीकृष्ण की कथा प्रत्येक पल नवीन लगती है ठीक उसी प्रकार जैसे किसी लम्पट व्यक्ति को पराई स्त्री की चर्चा में प्रति-पल अनुरक्ति बनी रहती है उसी परीक्षित ने पूछा कि हे मुनिवर! अन्य व्यक्तियों को या अन्य साधकों को शरीर त्याग करने पर ही हरि क्यों प्राप्त होते हैं, गोपियों की भाँति ही सशरीर क्यों प्राप्त नहीं करते। या इसका एक दूसरा अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि हे मुनिवर! जो व्यक्ति कमनीय कृष्ण को ब्रह्मभाव से नहीं भजता (जिस प्रकार गोपियों ने नहीं भजा) वह किस प्रकार गुण-युक्त शरीर से ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

विशेष—(१) प्रश्न को नितान्त अस्पष्ट ढंग से नन्ददास ने अभिव्यक्त कराया है।

(२) उपमा अलंकार है।

प्रश्न का समाधान

तब कहि श्री शुकदेव देव यह अचिरज नाहीं।
सर्व भाव भगवान कान्ह जिनके हिय माहीं ॥६३॥
परम दुष्ट सिसुपाल बालपन तें निदकु अति।
जोगिन कौं जो दुलंभ सुलभहि पाई सोइ गति ॥६४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—परीक्षित के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री शुकदेवजी कहते हैं—

व्याख्या—तब मुनि श्री शुकदेवजी ने कहा कि हे राजन् इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। जिनके हृदय में श्रीकृष्ण हैं वे किसी भी भाव से उनकी आराधना करें उन्हें अवश्य प्राप्त करते हैं या यों कह लो कि भगवान तो सर्वभावमय हैं प्रमुख बात है उनके हृदय में रहने की।

अत्यन्त दुष्ट शिशुपाल अपने बचपन से ही उनका प्रबल निंदक था। उसने भी (उनके हाथ से मरकर) वही गति पाई जो योगियों को भी अत्यन्त दुर्लभ होती है।

विशेष—(१) गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मुझे जो जिस प्रकार भजते हैं उन्हें मैं भी वैसे ही भजता हूँ—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

तुलसी के राम भी अपने प्रति अनुरक्त अवधवासियों से लंका-विजय के उपरान्त मिले तो जिसने जैसे देखना चाहा वैसे ही मिले थे। यही भगवान का मूल तत्व है।

(२) दुष्ट शिशुपाल वैरी रहकर भी मुक्ति को प्राप्त हुआ। इसी आशय को रावण का यह 'मानस' में आया कथन स्पष्ट करेगा—

सुर-रंजन भंजन भुवि-भारा। जौं प्रभु लीन्ह मनुज अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैर हठि करिहौं। बिन प्रयास भव-सागर तरिहौं।।

(३) अनुप्रास अलंकार है।

हरि-रस-ओपी गोपी ये सब तियनि तें न्यारी।
कँवल-नैन गोविंद-चंद की प्रान-पियारी।।६५।।

शब्दार्थ—तियनि तें=स्त्रियों से। न्यारी=भिन्न हैं।

प्रसंग—पहले बताए गए कारण का ध्यान दिलाते हुए गोपियों को सगुण शरीर में ही कृष्ण कैसे मिले, यह बताते हुए शुकदेवजी कहते हैं—

व्याख्या—ये कृष्ण के प्रेम में पगी हुई गोपियाँ संसार की अन्य स्त्रियों से भिन्न हैं। इसीलिए कमल के समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

विशेष—काव्यलिंग और लुप्तोपमा अलंकार हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण-गोपी-मिलन

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाए।
तब हरि के मन नैन सिमिटि सब स्रवननि आए ।।६६।।
झुनक मुकन पुनि छबिलि भाँति सब प्रगट भई जब ।
पिय के अँग-अँग सिमिटि मिले छबिले नैननि तब ।।६७।।

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—गोपियाँ अभी दूर थीं परन्तु कृष्ण को उनके पगों में बँधे नूपुरों की ध्वनि सुनाई दी तो कृष्ण को दर्शनों की लालसा हुई और उनकी समस्त अन्य इन्द्रियों की शक्तियाँ उनके नेत्रों में सिमट आई—

व्याख्या—जब श्रीकृष्ण ने उन गोपियों के (पगों में बँधे) नूपुरों की अत्यन्त सुहावनी ध्वनि सुनी तो उनके मन और नेत्र दोनों ही कानों के पास सिमटकर आ गए । कहने का तात्पर्य यह है कि वे तल्लीन होकर अपने कानों को उधर ही लगाकर साथ ही दृष्टि भी उसी दिशा की ओर दौड़ाकर उनकी नूपुर ध्वनि को सुनने लगे और जब वे समस्त गोपियाँ झनक-झनक पायल करती हुई पूर्णरूपेण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगीं तो प्रियतम श्रीकृष्ण के समस्त अंग उनके छबीले नेत्रों के पास सिमटकर आ गए । कहने का तात्पर्य यह है कि वे एकचित्त होकर गोपियों के सौंदर्य को निहारने लगे ।

विशेष—(१) प्रतीक्षा का सुन्दर चित्र खींचा है ।

(२) कृष्ण के हृदय में भी गोपियों के प्रति उतना ही प्रेम दिखाकर नन्ददासजी ने इस मत की पुष्टि की है—

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुनि अरजुन परतिग्या मेरी यह व्रत टरत न टारे ।

वैसे भी प्रेम एकांगी कभी भी सफल नहीं होता । गुप्तजी ने साकेत में लिखा है—

सखि ! पतंग जलता है तो फिर दीपक भी जलता है ।

और भी संस्कृत के एक कवि की उक्ति देखिए—

नैक पक्षो प्रेमः कदापि परिपुष्टते ।

पद्मावती भी रत्नसेन के वियोग का अनुभव इसी प्रकार करने लगी थी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदमावति तेहि जोग संजोगा ।
परी बिरह बस गहे वियोगा ।।

(३) मनोवैज्ञानिकता दर्शनीय है ।

(४) एकावली अलंकार व्यंजित है ।

सुभग बदन सब चितवत पिय के नैन बने यों ।
बहुत सरद ससि माँहि अरबरे ह्वै चकोर ज्यों ।।६८।।
अति आदर करि लई भईं पिय पैं ठाड़ी अनु ।
छबिलि छदनि मिलि छेक्यौ मंजुल घन मूरति जनु ।।६९।।

शब्दार्थ—अरबरे=चंचल हुए। शेष सरल हैं ।

प्रसंग—गोपियों के आने पर कृष्ण ने सभी का सादर स्वागत किया और उन्हें हृदय से लगाया । कवि यही बात कहते हैं—

व्याख्या—सभी गोपियों के अत्यन्त सुन्दर मुखों को देखते समय उनके प्रियतम श्रीकृष्ण के नेत्र इस प्रकार के लग रहे थे मानो शारदीय चन्द्रमाओं के अर्थात् अनेक शारदीय चन्द्रमाओं के बीच में चकोर चंचल होकर उन्हें निहार रहे हों।

श्रीकृष्ण ने उन्हें अत्यन्त आदर के साथ पास रखा और वे सभी भी जब हृदय से लगाई जा चुकीं तो श्रीकृष्ण के चारों ओर इस प्रकार खड़ी हो गईं मानो मृदुल घन मूर्ति को चंचल विद्युच्छटाओं ने घेर लिया हो ।

विशेष—(१) यहाँ एक प्रश्न उठता है कि कृष्ण ने गोपियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार, यह प्रदर्शित करके कि वे जब आईं तो किसी अपरिचित व्यक्ति के साथ की-सी ही औपचारिकता दिखाई, क्यों किया ? प्रश्न भी सहज है और इसका उत्तर भी अत्यन्त स्पष्ट है । उसका कारण यही हो सकता था कि प्रणय को और भी अधिक प्रगाढ़ करने के लिए इस प्रकार की किंचित् वैमुखी निठुर प्रवृत्ति दिखाया जाना आवश्यक ही था ।

(२) उत्प्रेक्षा अलंकार हैं ।

नागर-गुरु नँद-नन्द चन्द हँसिमं द-मंद मन ।
बोले बाँके बैन प्रेम के परम ऐन सब ।।७०।।
उज्जल रस कौ यह सुभाव बाँकी छवि छावै ।
बंक चहनि पुनि कहनि बंक अति रसहिं बढ़ावै ।।७१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—नागर=चतुर, शिष्टाचार में सभ्य। बाँके=कँटीले, यहाँ लक्षणा से व्यंग्यगर्भित रसीले।

प्रसंग—क्योंकि बाँकपन से प्रेम बढ़ता है इसीलिए चतुर श्रीकृष्ण ने कुछ व्यंग्य भरे रसीले वचन गोपियाँ से कहे—

व्याख्या—चतुर शिरोमणि नन्द-नंदन श्रीकृष्णचन्द्र ने तब किंचित् मंद-मंद मुस्कराकर इस प्रकार प्रेम में पगे कतिपय बांके वचन कहे।

शुद्ध और पवित्र प्रेम की यही प्रवृत्ति है कि बाँकपन उसे और भी शोभा देता है। कटाक्ष और सरस व्यंग्योक्तियाँ दोनों ही उसको और अधिक बढ़ाती हैं।

विशेष—काव्यलिंग अलंकार है।

अहो तिया कहा जानि भवन तजि कानन डगरीं।
अर्द्ध गई सर्वरी कछुक डर डरी न सगरी॥७२॥
लाल रसिक के बंक बचन सुनि चकित भईं यौं।
बाल-मृगिन की माल सघन बन भूलि परी ज्यौं॥७३॥

शब्दार्थ—डगरीं=वन-पथ पर अग्रसर हुईं। सर्वरी=शर्वरी, रात्रि। शेष सरल हैं।

प्रसंग—अहो, युवतियो! (या गोपियो) तुम क्या समझकर अपना-अपना घर छोड़ककर इस प्रकार इस आधी रात के व्यतीत हो जाने पर भी वन के मार्ग पर चली थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इतनी रात बीत गई है घर छोड़ते समय क्या तुम लोगों को कुछ भय नहीं लगा। इस प्रकार न तो इस समय तुम्हें आना ही चाहिए था और न मुझे ही इसकी आवश्यकता थी।

रसिक श्रीकृष्ण लाल के इस प्रकार के व्यंग्यगर्भित वचनों को सुनकर समस्त गोपियाँ उसी प्रकार आश्चर्य में पड़ गईं जिस प्रकार मृग-शावकों की माला अर्थात् टोली किसी सघन वन में मार्ग भूल गई हो।

विशेष—उदाहरण अलंकार है।

मंद परसपर हँसीं लसीं तिरछी अँखियाँ अस।
रूप उदधि उतराति रँगीली मीन पाँति जस॥७४॥
जब पिय कह्यो घर जाहु अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सों पाँति, रह गईं इक टक ठाढ़ी॥७५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—परस्पर=एक दूसरे की ओर देखकर। मीन-पाँति=मछलियों की कतार। जस=जैसे।

प्रसंग—गोपियाँ कृष्ण की व्यंग्यगर्भित भाव-भंगिमा को समझ गईं तो आपस में हँसने लगीं किन्तु क्षणभर बाद ही जब कृष्ण ने उन्हें घर जाने के लिए कहा तो पुनः वे विस्मित हो एकटक खड़ी रह गईं।

व्याख्या—तब गोपियाँ आपस में एक-दूसरी की ओर देखते हुए हँसने लगीं तो उनकी तिरछी आँखें इस प्रकार सुशोभित होने लगीं जैसे सौन्दर्य के सागर में तैरती हुई रंगीन मछलियों की कतार सुशोभित होती हैं।

लेकिन जब प्रियतम ने कहा कि तुम सब अब घर जाओ तो उन सभी के हृदय में चिंता बढ़ने लगी। पुतलियों की पंक्तियों के सदृश समस्त गोपियाँ एकटक खड़ी की खड़ी रह गईं।

विशेष—(१) यहाँ एक प्रश्न उठता है कि गोपियाँ चिंतित क्यों हुई थीं? यदि हम एक बात पर ध्यान दें तो यह प्रश्न समाधित होने लगेगा। 'चिन्ता वाढ़ी' शब्द से स्पष्ट है कि कोई चिंता गोपियों को पहले से ही थी तभी तो वह बढ़ी। और वह चिंता थी उसी समय से जब कृष्ण ने यह कहा था कि इतनी रात गये तुम लोगों को यहाँ आते समय क्या भय न लगा? तुम्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था। वही चिन्ता जिसे अब तक कृष्ण की मुखमुद्रा की हँसी को देखकर गोपियों की संदेहास्पद हँसी उभरने नहीं दे रही थी। अब वह बढ़ने लगी।

(२) उदाहरण और उपमा अलंकार है।

> दुख के बोझ छबि-सींव ग्रीव नै चली नाल सी।
> अलक अलिन के भार नमित मनु कमल माल सी ॥७६॥
> हिय भरि बिरह हुतासन सासन संग आवत झर।
> चले कछुक मुरझाइ मधु भरे अधर बिंब वर ॥७७॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—कृष्ण के घर लौट जाने की प्रस्तावित बात को सुनकर गोपियों की जो दशा हुई उसीका वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में है—

व्याख्या—गोपियों की वे गर्दनें जो छवि की चरमसीमा थीं अब दुःख के बोझ से कमल नाल की भाँति झुकने लगीं। उनकी केश-राशि से घिरी हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह ऐसी लगती थी मानो भ्रमावलियों से घिरी हुई झुकी हुई कमलों की पंक्ति हो।

उनके हृदय में एक दम वियोगाग्नि प्रज्वलित हो उठी इसी कारण उनकी श्वासों के साथ लपटें निकलने लगीं। उनके मधुमाधुरी बिंवा फल के समान अरुणाभ अधर जो मुरझाए हुए थे किंचित् हिले-डुले; तात्पर्य वे कुछ कहने के लिए उद्यत हुई।

विशेष—रूपक, यमक, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

> तब बोली ब्रज बाल लाल मोहन अनुरागी।
> गद्गद सुन्दर गिरा गिरिधरहिं मधुरी लागी ॥७८॥
> अहो अहो मोहन प्राननाथ सोहन सुखदायक।
> क्रूर बचन जनि कहौ नहिन ये तुम्हारे लायक ॥७९॥

शब्दार्थ—अनुरागी=प्रेम करनेवाला, प्रेमी, प्रियतम। लायक=योग्य। नहिन=नहीं हैं।

प्रसंग—गोपियाँ प्रियतम कृष्ण से कहने लगीं कि इस प्रकार के परुष वचन आपके योग्य नहीं हैं इसीलिए मत कहो।

व्याख्या—तब गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से ऐसी सुन्दर गद्गद वाणी में जो कृष्ण को मधुर लगी, इस प्रकार बोलीं कि हे प्रियतम ! मोहन ! हे प्राणों के नाथ, हे हमें सुख प्रदान करनेवाले हमसे इस प्रकार के कठोर वचन मत कहो, क्योंकि ये आपके योग्य नहीं हैं। अर्थात् आपको इस प्रकार के वचन शोभा नहीं देते।

विशेष—काव्यलिंग अलंकार है। 'अहो अहो' में वीप्सालंकार भी है।

> जो कोई बुझैं धरम तबहिं तासों कहिए पिय।
> बिन ही बूझे धरम कहत क्यों, कहि दहिए हिय ॥८०॥
> नेम धर्म जप तप ये सब कोउ फलहिं बतावैं।
> यह कहुँ नाहिन सुनी जो फल फिरि धरम सिखावैं ॥८१॥

शब्दार्थ—तासौं=उससे। बूझै=पूछे। कोउ=कोई। जो=यदि। शेष सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ कहने लगीं कि हमारे बिना पूछे ही आप धर्म की चर्चा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने लगे जो उचित नहीं—

व्याख्या—हे प्रियतम जब कोई आपसे धर्म की बात पूछे या पूछे कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है तभी आप उसको धर्म की बात बताया करिए। तुम व्यर्थ ही बिना ही पूछे किसीसे उसके कर्तव्य की बात करके उसके हृदय को जलाते हो।

फिर नियम, धर्म, जप, तप ये सभी फल की ओर मार्ग निर्देश करते हैं परन्तु यह बात हमने किसीसे भी नहीं सुनी कि फल के द्वारा धर्म की शिक्षा किसीको दी गई हो।

विशेष—(१) यहाँ यद्यपि प्रगट तो नहीं है फिर भी सांकेतिक रूप में भागवत में कृष्ण के द्वारा दिए गए गोपियों के उपदेश की ओर संकेत है। उन्होंने कहा था कि यदि तुम दर्शनार्थ यहाँ आई थीं तो वह तुम्हें हो गए अब जाओ और अपने-अपने पतियों को वे जैसे भी हैं आनन्दित करो—उनकी सेवा-सुश्रुषा करो—

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जड़ो रोग्यधनोऽपि वा ।
पति स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिर पातकी ॥

इसीलिए शायद गोपियाँ खीझ जाती हैं।

(२) काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

अरु यह तुम्हरौ रूप धरमि हौ के धरमहि मोहै।
घर मैं को तिय भरम धरमजहि आगे को है ॥८२॥
नगिन (न) कों धरम न रह्यौ पुलकि तन चले ठौर तें।
खग मृग गो बछ मच्छ कच्छ ते रहे कौर तें ॥८३॥

शब्दार्थ—अरु-(लक्षणा से)=उस पर तो। नगनिकों=पर्वतों का। पुलकि=पुलकायमान होकर, रोमांचित होकर। शेष सरल हैं।

प्रसंग—कृष्ण के सौन्दर्य को अपने मोह का कारण बताती हुई गोपियाँ कहती हैं—

व्याख्या—और फिर तुम्हारा यह अनिन्द्य यथा अनुपम सौन्दर्य तो धर्म करनेवाले व्यक्ति के धर्म को भी मोहित कर लेता है और फिर जब इस प्रकार के धर्म से लोग भी विमोहित हो जाते हैं तो फिर स्त्री का स्थान तो अपने घर में भी भ्रमात्मक है उसका मोहित होना स्वाभाविक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे इसी सौन्दर्य पर मोहित हो जाने के कारण पर्वत भी अपने अचलत्व या स्थैर्य रूपी धर्म को निवाहने में असमर्थ हो गए और वे रोमांचित शरीर-वाले होकर अपने स्थान से हिल गए। तात्पर्य वे भी अचल नहीं रह सके। विचलित हो गए। पक्षी, पशु, गाय, वछड़े मच्छ, कच्छप, इत्यादि सभी अपने-अपने भोज्य पदार्थ तक को छोड़ बैठे।

विशेष—(१) अन्तिम पंक्तियों से एक बिम्ब बनता है। ऐसा लगता है मानो श्रीकृष्ण किसी ऐसे हरित, दूर्वादल तथा घासवाले मैदान से होकर जा रहे हैं जिसके पास ही कोई विशाल तालाब है। तालाब में जलचर अपने भोजनार्थ व्यस्त थे और चारागाह में पशु (गाय-बछड़े, हरिणादि) और कृष्ण को देखकर वे सभी एकटक उन्हीं की ओर देखते रह जायँ अपना खाना तक बिसार दें।

(२) काव्यलिंग, विरोधाभास।

त्यौं ही पिय की मुरली जु रली अधर-सुधा-रस।
सुनि निजु धरम न तजै तरुनि त्रिभुवन महिं को अस ।।८४।।
सुनि गोपिन के प्रेम वचन-सी आँच लगी जित।
पिघरि चल्यो नवनीत-मीत नवनीत सहस हिय ।।८५।।

शब्दार्थ—त्यौंही=उसी प्रकार। जु=जो। रली=पगी हुई है। अधर-सुधा-रस=अधरों के अमृत रस से। महिं=में। अस=इस प्रकार की।

प्रसंग—मुरली की मोहकता का वर्णन गोपियाँ करती हैं।

व्याख्या—उसी प्रकार हमारे प्रियतम की वह मुरली जो उनके अधरों के अमृत रस से पगी हुई रहती है उसकी मधुर और मोहक स्वर-लहरी को सुनकर संसार में कौनसी ऐसी तरुणी है जो अपने-आपको अधर्मिणी न बना ले।

गोपियों के इन प्रेम-पगे वचनों को सुनकर कृष्ण के हृदय में आग-सी लगी। नवनीत रूपी मीत जिसका हृदय भी नवनीत की भाँति ही कोमल था वह पिघलने लगा। अर्थात् नवनीत के समान कोमल हृदयवाले श्रीकृष्ण पिघल गए, द्रवित हो गए।

विशेष—गोपियों के समान जहाँ एक ओर सामाजिक लोक-लाज का ध्यान था वहीं उनके साथ उस पारलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम भी था। इसीलिए दूसरे को अधिक महत्वपूर्ण जानकर वे अपने सांसारिक व्यवहारों और उत्तरदायित्वों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के प्रति अधिक चिंतित नहीं रहती थीं।

(२) उपमा अलंकार है।

बिहँसि मिले नँदलाल निरखि ब्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम बस ॥८६॥

शब्दार्थ—निरखि=देखकर। आत्माराम=आत्मा में ही रमण करने वाले।

प्रसंग—कृष्ण आत्माराम होते हुए भी प्रेम-प्रताप से गोपियों के साथ रमण करने लगे।

व्याख्या—नँदलाल 'श्रीकृष्ण व्रज-बालाओं को वियोग-वह्नि में प्रज्वलित हुई जानकर हँसे और उन्हें आलिंगन-बद्ध कर लिया। यद्यपि श्रीकृष्ण अपनी ही आत्मा में रमण करनेवाले हैं फिर भी वे प्रेम के वशीभूत होकर उनके साथ रमण करने लगे।

विशेष—(१) प्रेम की विशेषता का प्रतिपादन किया गया है। तुलसी ने भी लिखा है—

प्रेम तें प्रकट होंहि भगवाना।

कबीर भी लिखते हैं—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माँहि॥

प्रेम से ही भगवान की उपलब्धि सम्भव हो पाती है।

(२) योग और अध्यात्म-ज्ञान के साथ ही प्रेम और भक्ति की भी महत्ता स्वीकार की गई है। यही विशिष्टाद्वैत और वल्लभ सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है। शृंगार के साथ-साथ दार्शनिक तत्व का सुन्दर समावेश किया है।

(३) विरोधाभास अलंकार है।

वन-विहार

बिहरत बिपिन बिहार उदार नवल नँद-नंदन।
नव कुमकुम घनसार चारु चरचित तन चन्दन ॥८७॥
गोपीजन मन गोहन-मोहन लाल बने यौं।
अपनी दुति के उडुगन उडुपति घन खेलत ज्यौं ॥८८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—विहरत=विहार करते हैं। घनसार=कपूर। कुमकुम=कुंकुम या सिन्दूर।

प्रसंग—कृष्ण गोपियों के साथ विहार करने लगे—

व्याख्या—उदार हृदयवाले नन्द को आनन्दित करनेवाले नवीन वय-सम्पन्न श्रीकृष्ण गोपियों के साथ वन में विहार करने निकल गए। और उनके शरीरों को रमणानन्द के हेतु नूतन कुमकुम, कपूर और सुन्दर चन्दन-चूर्ण से सुसज्जित करने लगे।

गोपियों के हृदय को खींचनेवाले मनमोहन श्रीकृष्ण लाल उन गोपियों के बीच में रमण करते समय ऐसे लगे मानो अपनी कांति के तारे तथा तारापति चन्द्रमा मानो बादलों से खेल रहे हों।

विशेष—(१) 'पद्मावत' में 'मानसरोदक खण्ड' में जायसी ने भी एक ऐसी ही कल्पना की है कि पद्मावती को चन्द्रमा और अन्य उसकी सहेलियों को सितारे माना है।

(२) उदाहरण अलंकार है।

कुंजनि कुंजनि डोलनि मनु घन तें घन आवनि।
लोचन तृषित चकोरन के चित चोप बढ़ावनि॥८९॥
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गए तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ॥९०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—खेल प्रारम्भ हो गया है। कृष्ण प्रत्येक कुंज में घूमते फिर रहे हैं। देखिए कैसे सुन्दर लगते हैं—

व्याख्या—कृष्ण अब कुंज-कुंज में घूमने लगे। इस समय वे ऐसे लगते थे मानो गोपियों के नेत्रों रूपी चकोरों के हृदय में दर्शन लालसा और भी अधिक बढ़ाता हुआ चन्द्रमा एक जलद पटल से दूसरे जलद पटल में प्रविष्ट हो रहा हो।

अब श्रीकृष्ण सुन्दर यमुना के किनारे गए जहाँ पर कि अत्यन्त कोमल भाव मन में सरसाने वाली मलय समीर बह रही थी और शोभाओं की भीड़ जुड़ी हुई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—(१) बिम्ब-विधान अत्यन्त सुन्दर है।
(२) उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कुसुम धूरि घूँघरि कुंज छबि पुंजनि छाई।
गूंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ।।९१।।
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
इत घनसार तुसार मलय मंदार झकोरत ।।९२।।

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—कुंजों की शोभा के वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं—

व्याख्या—कुंजों के समूहों में पुष्पों की पराग-रज के कारण फैली हुई धुंध से और भी शोभा उनमें छा गई थी। उनमें मंजुल क्वणन् करते हुए भौंरे घूम रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो वेणु-वादन हो रहा हो।

इधर एक दिशा में महकती हुई सुन्दर मालती और चम्पा मन को चुरा लेती हैं और उधर दूसरी दिशा में कपूर की गन्ध से सना हुआ मलयानिल मंदार को झकोर रहा है।

विशेष— उत्प्रेक्षा अलंकार है।

इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।
इत कुरुवक केवरा केतकी गंध-बंधु बस ।।९३।।
इत तुलसी छबि हुलसी छाँड़ति परिमल लपटैं।
इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दबटैं ।।९४।।

शब्दार्थ—एलि=इलायची। कुरुबक=एक वृक्ष विशेष। केवरा=केवड़ा। झेलि रहीं=रस-राशि गिरा रही हैं।

प्रसंग—कुंजों की शोभा का वर्णन—

व्याख्या—किसी दिशा में या किसी स्थल पर लौंग, नारंगी, इलायची इत्यादि रस-राशि-वृष्टि कर रही हैं और किसी स्थल पर कुरवक केवड़ा और केतकी सुगन्धि में बसे हुए हैं।

इधर अपनी प्रसन्न मुद्रा में और भी अधिक छविमान लगती हुई तुलसी परिमल की लपटें छोड़ रही हैं और उधर इन कुंजों की गोद में बैठा कुमोद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आमोद ले रहा है और सुख लूट रहा है।

विशेष—(१) ये समस्त पुष्प सौरभयुक्त हैं और साथ ही रसीले तथा रंगीले भी। शृंगार रसानुकूल ही समस्त साज-सज्जा है जो मदनोत्तजक है। आगामी प्रसंग का पूर्वाभास यहाँ हो रहा है।

(२) प्रकृति-चित्रण की नामपरिगणानात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुभग सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि यह जु बनाई ।।९५।।
बिलसत बिबिध बिलास हास नीवी कुच परसत।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यौं बरसत ।।९६।।

शब्दार्थ—जु=जिसे। तरंग=लहरें। करि=से।

प्रसंग—यमुना की उज्ज्वल बालुका का वर्णन कवि नन्ददास करते हैं—

व्याख्या—वहीं, उज्ज्वल, कोमल और मृदुल यमुना के किनारों पर वही बालुका अत्यन्त छवि को प्राप्त हो रही थी जिसे यमुना ने अपनी लहरों से बनाया था।

वहीं विराजमान श्रीकृष्ण गोपियों की नाभि और स्तनों को छूकर अनेक प्रकार के विलास करते हैं। इस अवसर पर यहाँ प्रेम सरस रहा है और घन-श्याम से मानो नूतन-प्रेम रस बरस रहा है।

विशेष—उत्प्रेक्षा और परिकरांकुर अलंकार हैं।

मदन-मद-हरण

तहँ आयो यह मौन पंचसर कर हैं जाके।
ब्रह्मादिक कों जीति बढ़ि रह्यौ अति मद ताके ।।९७।।
निरखि ब्रजबधू संग रँग भरे नव किसोर तन।
हरि मनमथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ को मन ।।९८।।

शब्दार्थ—मद=अहंकार। शेष सरल हैं।

प्रसंग—काम कृष्ण के किशोर शरीर को देखकर उसपर भी सवार होने के उद्देश्य से उधर आ निकला तो उसे कृष्ण ने उल्टा ही मथ डाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—वहाँ यह कामदेव जिसके पास प्रख्यात ५ बाण रहते हैं चुपचाप ही आ गया। इस कामदेव का अहंकार ब्रह्मादि देवों को जीत लेने के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है।

श्रीकृष्ण को व्रज-वधुओं के साथ देखकर और उन्हें काफी किशोरावस्था तथा कोमल तनवाला जानकर उनके मन को मथना चाहा परन्तु श्रीकृष्ण ने उलटे उसीके मन को मथ डाला।

विशेष—अनुप्रास अलंकार है।

मुरछि पर्‌यो तब मैन कहूँ धनु कहूँ निषंग सर।
लखि रति पति की दसा भीत भइ मारति उर कर ॥९९॥
पुनि पुनि पियहिं आलिंगति रोवति अति अनुरागी।
मदन के बदन चुवाइ अमृत भुज भरि लै भागी ॥१००॥

शब्दार्थ—मैन=कामदेव। निषंग=तूणीर। सर=शर, बाण। उर=हृदय। यहाँ लक्षणा से वक्षस्थल अर्थ होगा। आलिंगति=आलिंगन करती है।

प्रसंग—कामदेव को जब कृष्ण ने उल्टा ही मथ डाला तो वह मूर्छित हो गया। उसकी ऐसी दशा देखकर उसकी पत्नी रति की व्याकुलता का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

व्याख्या—तब मदन मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके साथ ही उसके धनुष-बाण और तूणीर जहाँ-तहाँ फैल गए। अपने पति की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर रति अपने मन में बहुत डरी और अपने हाथों से अपना वक्षस्थल पीटने लगी। वह बार-बार प्रिय का आलिंगन करने और प्रेमाधिक्य के कारण रोने लगी। अन्ततोगत्वा अपने मुख से उसके मुख पर अमृत गिराकर, तात्पर्य उसके अधरों का चुम्बन लेकर उसकी मूर्छा को शांत किया और उसे अपनी भुजाओं में भरकर भाग गई।

विशेष—(१) कारकदीपक, पुनरुक्ति प्रकाश और अनुप्रास अलंकार है।

(२) भक्तों को भी भगवान की ही भाँति काम और रति तंग नहीं करते यही भाव द्योतित होता है।

(३) कवि ने यहाँ हरि के विरोधी की पराजय और हरि-प्रेमी-आत्माओं की सहज प्रसन्नता को ध्वनित किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीगर्व

अस अद्भुत पिय मोहन सों मिलि गोप-दुलारी ।
नहिं अचरजु जौ गरब करहिं गिरिधर की प्यारी ॥१०१॥
रूप भरीं गुन भरीं पुनि परम प्रेम रस ।
क्यौं न करैं अभिमान कान्ह भगवान किए बस ॥१०२॥

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—गोपियाँ रूप-गुण और प्रेम से सम्पन्न तो थीं ही इस पर, उन्होंने इस प्रकार के अदम्य सहासी साक्षात् ब्रह्म को अपने वशीभूत कर रखा था; इसी लिए उनका गर्व कर बैठना स्वाभाविक था । यही बात नन्ददासजी प्रस्तुत पंक्तियों में कहते हैं—

व्याख्या—इस प्रकार के अद्भुत प्रियतम श्रीकृष्ण से मिलकर गोप-बालाएँ यदि गर्व करने लगें (सोचने लगें कि आह ! हमारे जैसा कोई भी नहीं है) क्योंकि हम तो गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले कृष्ण की प्रियतमा हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं ।

ये गोपियाँ सौन्दर्य से आपूरित तनवाली पूर्ण युवतियाँ तो थी हीं, गुणवती भी थीं । उसके साथ ही साथ कृष्ण के प्रति इनके मन में अद्वितीय पावन प्रेम भरा हुआ था । फिर बताइये ये स्वयं साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण को अपने वश में करने पर भी अहंकार क्यों न करतीं अर्थात् वे अहंकार अवश्य करतीं और उन्होंने अहंकार किया भी ।

विशेष—(१) काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास अलंकार हैं ।

(२) मानव मन का एक सहज सत्य उद्घाटित किया गया है । तुलना कीजिए—

रूप, गुण, धन, पाइ होहु मद काहि नाहि ।
कौनों राज पाइ आजमाई प्रभुता नहीं ॥
इत्यादि ।

जहँ नदि नीर गँभीर तहाँ भल भँवरौं पराई ।
छिल छिल सलिल न करैं परं तौ छबि नहिं करई ॥१०३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम-पुंज बरधत्त के काज व्रजराज कुँअर पिय।
मंजु कुंज में नेकु दुरे अति प्रेम भरे हिय ॥१०४॥

शब्दार्थ—छिलछिल सलिल=उथले या छिछले पानी में। शेष सरल हैं।

प्रसंग—एक सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए कवि आगे गोपियों के गर्व को हरने के उद्देश्य से कृष्ण के छिपने की बात कहता है—

व्याख्या—नदी में जहाँ गंभीरता होती है अर्थात् जिस स्थल पर पानी गहरा होता है वहीं पर भँवरें भी पड़ती हैं किन्तु उथले पानी में भँवरें नहीं पड़तीं और यदि पड़ती भी हैं तो उनमें कोई सौन्दर्य नहीं होता। प्रियतम व्रजराज नन्द-कुँवर श्रीकृष्ण गोपियों के हृदय में प्रेम को और भी अधिक बढ़ाने के लिए सुन्दर कुंज में अपने हृदय में प्रेम भरे थोड़ी-सी देर के लिए छिप गए।

विशेष—(१) भक्त के मन में पनपे अहकार को ईश्वर स्वयं ही हरण कर लेते हैं और वह भी प्रेम-पूर्वक। हाँ, उतनी ही देर के लिए उसे प्रिय भगवान के दर्शनों से वंचित अवश्य रहना पड़ता है।

(२) अनुप्रास और यमक अनंकार है।

द्वितीय अध्याय

मधुर वस्तु ज्यों खात निरन्तर सुख तौ भारी।
बीचि-बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी ॥१॥
ज्यों पटु पट के दिए निपट ही रसहिं परै रँग।
तैसहि रंचक विरह के प्रेम के पुंज बढ़त अँग ॥२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—यदि किसी व्यक्ति को सर्वदा मधुर वस्तुएँ ही खाने को मिलें तो अत्यन्त सुख प्राप्त होता है परन्तु यदि बीच-बीच में (कभी-कभी) कड़ुवा और अम्ल, तिक्त पदार्थ भी मिले तो वह अत्यन्त रुचिकर लगता है।

जिस प्रकार किसी एक रंग में रँगे वस्त्र में दूसरे रंग का पुट दिए जाने पर उसमें और भी अधिक चटक और आकर्षक रंग आ जाता है वैसे ही प्रेम में भी थोड़ा-सा (अल्पकालिक) विरह उसे पुष्ट करता है।

विशेष—(१) भाव मिलाइये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलन अन्त है मधुर प्रेम का,
और विरह जीवन है ।
विरह प्रेम की जाग्रत गति है,
और सुसुप्त मिलन है ।
—'पथिक' (रामनरेश त्रिपाठी)

(२) उदाहरण भी नन्ददासजी ने ऐसे चुने हैं जो सरस शृंगार के पोषक हैं । एक अच्छे कवि का यह धर्म है कि उसे अभीष्ट रसोद्रेक हेतु तदुपयुक्त व्यापार पदार्थ, उदाहरण, समय, स्थान आदि को रखना चाहिए ।

(३) उदाहरण और यमक अलंकार हैं ।

जिनके नैन निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं ।
तिनके गृह वन कुंज ओट दुख अगनित आहीं ॥३॥

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—गोपियों की कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने के बाद की दशा का एक उपमा के माध्यम से वर्णन—

व्याख्या—जिनके लिए कृष्ण को एक पल भी ओट में हो जाने पर करोड़ों युग बीत जाते हैं । तात्पर्य कृष्ण के एक पल के बिछोह को भी करोड़ों युगों जैसा मानती थीं उनके लिए घर, वन और कुंज कुछ भी हो, कृष्ण का अन्तर्धान होना कितना दुःखद है, इसकी कोई गणना कर सकना सम्भव नहीं ।

विशेष—कोई यह प्रश्न उठा सकता है कि क्या केवल गोपियों को ही विरह ने सताया था, कृष्ण को नहीं । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है—(१) कृष्ण को गोपियों के अहंकार ने रुष्ट कर दिया था । और (२) भगवान पुरुष नामधारी है अतः (३) उन्हें कठोर हृदय मिला था अपेक्षाकृत गोपियों के । भवभूति ने लिखा भी है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
नराणाम् हि चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

(२) काव्यलिंग अलंकार की व्यंजना है । काकुवक्रोक्ति स्पष्ट है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरह-दशा-वर्णन

थकि-सी रहीं ब्रजवाल लाल गिरिधर पिय बिनु यों ।
निधन महानिधि पाइ बहुरि ज्यौं जाइ भई त्यों ।।
ह्वै गईं विरह बिकल तब बूझत द्रुम बेली-बन ।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन ।।५।।

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—गोपियों की विरह-व्याकुल दशा का वर्णन किया गया है—

व्याख्या—समस्त ब्रज-बालाएँ श्रीकृष्ण लाल गिरधारी के बिना इस प्रकार थकी-थकी-सी हो गई जिस प्रकार किसी निर्धन व्यक्ति को महानिधि प्राप्त हुई हो और वह पुनः खो गई हो । समस्त गोपियाँ इस प्रकार विरह-व्याकुल होकर द्रुम-बेलि सभी से कृष्ण के विषय में पूछती फिरती हैं । सही बात है कि विरही जन, कौन जड़ है और कौन चैतन्य, यह कुछ नहीं जानते हैं ।

विशेष—(१) इसी प्रकार का वर्णन साहित्य में हुआ है । राम सीता को खोजते हुए पूछते हैं ।

रे वृक्षाः पर्वतस्याः, गिरि गहनलताः वायुनावीज्यमानाः ।
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकतापेन दग्धः ।।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्र कांची ।
हा सीता ! केन नीता ! ममहृदयगता, कोकजन केन दृष्टा ।।

—हनुमन्नाटके

ठीक ऐसी ही बात राजा लक्ष्मणसिंहजी लिखते हैं—

कामातुर होत हैं सदाई मति-हीन तिन्हैं,
चेत और अचेत माँहि भेद का लखावैगो ।।

तुलसी के राम को देखिए इसीलिए उनकी क्या स्थिति है—

हे खग, मृग हे मधुकर स्रेनी ।
तुम देखी सीता मृग-नैनी ।।

मेघदूत में कालिदास लिखते हैं—

कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।
(कामी की हो कृपण प्रकृति, चेतना-चेतनों में)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपियों को काम-वासना तो नहीं थी क्योंकि उसे पहले ही शान्त किया जा चुका था अतः यहाँ काम शब्द का अर्थ इच्छा से लिया जाएगा।

(२) उदाहरण और विनोक्ति अलंकार है।

हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनियत दै चित।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन लाल लखे इत ॥६॥
हे केतकि ! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किधौं नंद-नंद (न) मंद मुसकि तुमरे मन मूसे ॥७॥

शब्दार्थ—सुनियत=सुनो। दै चित=ध्यानपूर्वक। रूँसे=रुष्ट हुए। मुसकि=मुस्कराकर। मूसे=मूस लेना, ठग लेना।

प्रसंग—अनेकानेक लताओं से कृष्ण के विषय में गोपियाँ पूछती हैं कि कहीं कृष्ण तो उन्होंने नहीं देखे।

व्याख्या—हे मालती ! हे जूथिके ! तुम तनिक ध्यान देकर हमारी बात सुनो ! बताओ, तुमने इधर कहीं मान और मन को हरण करनेवाले गोवर्धन-धारी श्रीकृष्ण को तो नहीं देखा है। अरी केतकी ! क्या तुमने इधर कहीं हमारे प्रियतम जो हमसे रूठ गए हैं, इधर देखे तो नहीं हैं। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर तुम्हारे भी मन चुरा लिए हों।

विशेष—(१) गोपियों के प्रस्तुत वर्णन में दो बातें ध्यान देने की हैं। पहली यह कि उन्होंने बेलियों से मन चुरानेवाली बात क्यों कहीं, इसीके दोनों कारण हैं—गोपियाँ विरह-विकला थीं, बेलें जड़, उनके प्रश्नों का उत्तर कैसे देतीं। इसीलिए गोपियों ने अपने अनुकूल ही उन्हें भी विरह-विकला देख लिया अथवा वे यह कहकर बेलियों को उकसाना चाहती हैं कि वे बता दें इधर से गया हो तो कि अभी-अभी तो इधर से गया है। हमारे मन पर तो कोई प्रभाव उसने डाला नहीं।

(२) सन्देह और यमक अलंकार है।

हे मुकताफल बेलि ! धरें मुक्ता-मनि-माला।
देखे नैन बिसाल मोहनै नन्द के लाला ॥८॥
हे मंदार उदार बीर करबीर महामति।
देखे कहूँ बलबीर धीर मन-हरन धीर गति ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—वही।

व्याख्या—हे मुकताफलों रूपी मणियों की माला पहने हुए मुक्ताफल वेलि ! कहीं तूने विशाल-नयन मन को मोह लेनेवाले नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण को तो नहीं देखा। हे उदार मंदार के वृक्ष, हे वीर करवीर तुम तो महान् बुद्धिवाले हो। बलराम को धीरज दिलानेवाले, धीर-गति से चलनेवाले श्रीकृष्ण तुमने कहीं देखे हैं ?

विशेष—अनुप्रास अलंकार है।

ए चन्दन ! दुखकन्दन सब कहुँ जरत सिरावहु।
नँद-नन्दन-जगवन्दन-चन्दन हमहिं मिलावहु ॥१०॥
बूझहु री इन लतनिफूलि रहीं फूलनि सोहीं।
सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होहीं ॥११॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—वही।

व्याख्या—हे चन्दन ! तुम तो जलते हुए व्यक्तियों को भी ठंडक प्रदान करनेवाले हो, दूसरों के दुःखों का विनाश करनेवाले हो, अरे ओ वीरन ! चन्दन कैसे भी बने तुम हमें समस्त संसार को आनन्दित करनेवाले उस नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण से मिलाओ।

अरी तुम इन लताओं को तो पूछो जो इस प्रकार पुष्पित हो रही हैं या इस प्रकार प्रसन्न हो रही हैं। इन्हें अवश्य पता होगा क्योंकि बिना प्रियतम के स्पर्श के वे इतनी फूल ही नहीं सकती थीं।

विशेष—काव्यलिंग, मानवीकरण, श्लेष अलंकार हैं।

हे सखि ये मृगबधू इनहिं किन बूझहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन अबहिं कतहूँ चितए हरि ॥१२॥
अहो कदम्ब, अहो अम्ब, निंब, क्यों रहे मौन गहि।
अहो बट ! तुंग सुरंग बीर कहुँ इत उलहे लहि ॥१३॥

शब्दार्थ—डहडहे=डबडबाए हुए। चितए हरि=श्रीकृष्ण को देखा है। बट=बरगद का वृक्ष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—वही ।

व्याख्या—अरी सखी ! तुम इन मृग-वधुओं के पीछे-पीछे जाकर क्यों नहीं पूछती हो । (जाओ पूछो, मुझे तो ऐसा लगता है इन्हें शायद ज्ञात हो क्योंकि) इनके डबडबाए हुए नेत्र यही प्रकट कर रहे हैं कि इन्होंने अभी-अभी कहीं श्री-कृष्ण को देखा अवश्य है ।

अरे कदम्ब, हे नीम, अरे आम्रवृक्ष ! तुम सब के सब मौन क्यों साधे हुए हो ? अरे सुन्दर रँगवाले ऊँचे वटवृक्ष ! अरे ओ बीरन ! तुम्हीं बताओ इधर-उधर देखकर कि कहीं कृष्ण दिखाई तो नहीं देते ।

विशेष—(१) वट के पहले तुंग विशेषण का अपना महत्व है। ऊँचा व्यक्ति (लम्बा व्यक्ति) आसानी से पर्याप्त दूर तक निर्बाध देख लेता है। ऐसे ही वटवृक्ष ऊँचाई के कारण पर्याप्त लम्बी सीमाओं तक देखकर बता सकता था।

(२) काव्यलिंग अलंकार है ।

जमुन निकट के बिटप पूछि भइँ निपट उदासी ।
क्यों कहिहैं सखि महाकठिन ये तीरथ-बासी ।।१४।।
हे अवनी ! नवनीत-चोर चित-चोर हमारे ।
राखे कितहिं दुराइ बतावहु प्रानपियारे ।।१५।।

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—यमुना के समीप स्थित वृक्षों से पूछने पर तो अत्यन्त उदासी ही हाथ लगी । इसी अवसर पर एक गोपी यमुना के समीप के उन वृक्षों को मौन देखकर कह उठी कि अरी सखी ! ये तीर्थवासी पंडे हैं ये तो कुछ बताकर नहीं दे सकते । अतः इनसे तो पूछना भी व्यर्थ ही है । तुम और किसीसे आगे चल-कर पूछो ।

हे पृथ्वी माँ ! माखन चुरानेवाले और हमारे हृदयों को चुरानेवाले, हमारे प्रियतम प्राणाधार को तुमने कहाँ छिपाकर रखा है, बता दो न !

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों से तत्कालीन पंडों या महन्तों की स्थिति का पता चलता है कि वे किसी भी दुःखी-जन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करते थे । वे परमात्मा के विषय में कुछ भी बताकर नहीं देते थे। इसका कारण यह नहीं था कि वे स्वयं भी अनभिज्ञ होते थे; नहीं, वे पूर्णतः भिज्ञ होते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी इतने कठोरहृदय होते थे।

(२) व्यंग्य देखने योग्य है।

(३) काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास अलंकार है। साथ ही काव्यलिंग की व्यंजना भी है।

अहो तुलसी कल्यानि ! सदा गोविन्द-पद-प्यारी।
क्यों न कहति तू नन्द-नन्दन सों दसा हमारी ॥१६॥
अपने मुख चाँदने चलैं सुन्दरि तिन माहीं।
जहँ आवै तम पुंज कुंज गहबर तरु छाहीं ॥१७॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—वही।

व्याख्या—अरी तुलसी माँ ! तू तो सभी का कल्याण करनेवाली है और हमेशा गोविंद को प्रिय भी है। अथवा तुम भी श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त हो। फिर तुम उनसे हमारी इस दयनीय दशा का वर्णन क्यों नहीं करती ! गोपियाँ इस प्रकार वन में विलाप करती फिर रही थीं कि जहाँ-जहाँ उनको गहन तिमिराच्छन्न कुंज-समूह मिला वहाँ-वहाँ उनके अपने मुख से प्रकाश हो जाता था। वृक्षों की छाया में भी प्रकाश हो जाता था।

विशेष—अतिशयोक्ति अलंकार है।

इहि विधि बन घन बूझि ढूँढ़ि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मन भाईं ॥१८॥
मोहन लाल रसाल कि लीला इनहीं सोहैं।
केवल तनमय भईं कछु न जानति हम को हैं ॥१६॥

शब्दार्थ—ढूँढ़ि-बूझि=खोजकर तथा पूछकर। नाईं=समान। सोहैं=सुशोभित होती हैं।

प्रसंग—जब सब ओर खोजकर और पूछ-पूछकर हार गईं और उन्हें कहीं भी उनका पता नहीं लग सका तो वे हारकर कृष्ण-लीला स्वयं करने लगीं। इसीका वर्णन करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं—

व्याख्या—इस प्रकार सघन वन में खोजकर और पूछ-पूछकर जब वे हार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गईं तो उन्मत्तों की भाँति ही अपने मन को रुचनेवाली श्रीकृष्णलाल की लीलाओं का अभिनय करने लगीं। मोहनलाल की यह अभिनीत लीला इन्हीं गोपियों को ही सुन्दर लगती है। वे उस लीलाभिनय में इतनी तन्मय हो गईं कि उन्हें यही ध्यान नहीं रहा कि हम कौन हैं। तात्पर्य यह है कि वे पूर्णतः आत्म-विस्मृत होकर लीलाभिनय करने लगीं।

विशेष—(१) जब कोई भाव दृढ़ और प्रगट होकर दूसरे भावों पर अपना प्रभाव छोड़ता है तब वह स्वभावतः आंगिक-क्रियाओं के रूप में आ जाता है—यह हमारी इच्छा के न रहते हुए भी घटित होता है। यही मनोवैज्ञानिक सिद्धांत यहाँ अत्यन्त सुन्दर ढँग से प्रस्तुत किया गया है। यही तन्मयता वस्तु की अविद्यमानता में उसकी विद्यमानता दिखाती है, तदनुकूल दशा को प्राप्त करती है। इसीको योगी और भक्त प्राप्त करना चाहते हैं और तदर्थ सभी प्रकार का सतत-यत्न करते रहते हैं। आराध्य का गुण-कीर्तन, भजनार्चन तथा तद्ध्यान-दर्शनादि इनके लिए साधन रूप हैं। तल्लीनता या तन्मयता की अन्तिम स्थिति समाधि है।

(२) अनुप्रास अलंकार है।

भृंगी भय तें भृंग होत इक कीटु महा जड़।
कृष्ण भगति तें कृष्ण होत कछु नहिं अचरज बड़॥२०॥
तब पायो पिय पद-सरोज को खोज रुचिर तहं।
जब, गद, अंकुस, कुलिस, कमल छवि जगमगात जहं॥२१॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—गोपियों की लीलाभिनय की स्वाभाविकता को प्रमाणित करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं—

व्याख्या—एक महान् जड़ कीट भृंगी के भय से भृंगी ही बन जाता है तो फिर यदि कृष्ण-भक्ति में रँगा व्यक्ति उसी भक्ति के बल पर कृष्ण हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार लीलाभिनय करते-करते उन्हें एक स्थान पर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के पद-कमल का एक चिह्न दिखाई दिया। उस पद-चिह्न में शंख, चक्र, अंकुश, कमल और वज्र के चिह्न स्पष्टरूपेण दिखाई दे रहे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—(१) ये शंख, चक्रादि चिह्न जो कवि ने दिए हैं वे हस्तसामुद्रिक-विज्ञान के अनुसार या सामुद्रिक शास्त्रानुसार अत्यन्त शुभ और महान् ऐश्वर्यशाली के पद-तल पर होते हैं। कृष्ण तो अवतार ही हैं। उनके पद-तल पर समस्त चिह्न विद्यमान थे। इन्हें गोपियों ने अनेक बार देखा था। इसीसे उन्हें यहाँ भी इस पद-चिह्न को देखकर विश्वास हो चला होगा।

(२) रूपक, प्रतिवस्तूपमा अलंकार हैं।

जो रज सिव अज कमला खोजत जोगी-जन-हिय।
ते सब बन्दन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय ॥२२॥
देखे ढिग जगमगत तहाँ प्यारी तिय के पग।
चितय परस्पर चकित भईं धुरि चलीं तिही मग ॥२३॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—श्रीकृष्ण-रज की महिमा बताते हुए नन्ददास आगे कहते हैं कि गोपियों को पास में ही श्रीकृष्ण की प्रियतमा राधिकाजी के चरण-चिह्न भी दिखाई दिए—

व्याख्या—जिस पदरज के लिए अज, शिव और स्वयं लक्ष्मी अपने हृदय पर धारण करने की इच्छा से खोजते रहते हैं उसी रज को वे समस्त गोपियाँ मस्तक पर रखने लगीं और उसकी वन्दना करने लगीं।

वहीं पास में ही उन्होंने प्रियतमा राधिकाजी के पद भी देखे और उन्हें देखकर वे एक-दूसरे की ओर देखकर अपना-अपना आश्चर्य प्रकट करने लगीं और फिर उसी मार्ग पर आगे चल पड़ीं।

विशेष—(१) प्रीति को यहाँ श्रद्धा और भक्ति में परिणत होते दिखाया है।

(२) अनुप्रास अलंकार है।

आगैं चलि पुनि अवलोकीं नवपल्लव सैंनी।
जहँ पिय सुसुम कुसुम लै सुकर गुही है बेनी ॥२४॥
तहँ पायो इक मंजु मुकुर मनि-जटित विलोलै।
तिहि बूझैं ब्रजबाल विरह भरि सोउ न बोलै ॥२५॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—आगे चलकर गोपियों को कतिपय अन्य चिह्न भी मिले।

व्याख्या—फिर आगे चलकर इन गोपियों ने एक नवीन पल्लवों की श्रेणी देखी जहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी प्रियतमा की वेणी अपने हाथ में ये सुन्दर फूल लेकर गूँथी थी। वहीं उन्होंने एक मणि-जटित दर्पण भी देखा। ब्रज-बालाएँ उसी दर्पण से विरह-व्याकुल हो पूछने लगीं कि कृष्ण कहाँ है, फिर भी वह विरह-व्याकुलता के कारण बोला ही नहीं।

विशेष—(१) अनुप्रास अलंकार है।

(२) भाषा का माधुर्य देखते ही बनता है।

> तर्क करत अपमाहिं अहो यह क्यों कर लीन्ह्यौ।
> तिन मैं तिनके हिय की जानि उन उत्तर दीन्ह्यौ ।।२६।।
> बेनी गुहन समय छबिलों पाछें बैठो जब।
> सुन्दर बदन बिलोकनि पिय के अंतर भयौ तब ।।२७।।

शब्दार्थ—अपमाहिं=आपस में। शेष सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ दर्पण के विषय में आपस में तर्क-वितर्क कर कहने लगीं कि इसे इसलिए लिया गया था कि वेणी गुहते समय राधिकाजी का सुन्दर मुख देख सकें—

व्याख्या—तब वे समस्त गोपियाँ आपस में तर्क करती हुई विचार करने लगीं कि इसे किस प्रयोजन से हाथ में लिया गया होगा? उन्हीं में से एक गोपी ने उनके मन की बात समझकर यह उत्तर दिया कि वेणी गूँथते समय जब छबीले श्रीकृष्ण पीछे बैठे होंगे तो अपनी प्रियतमा के सुन्दर मुख को देखते रहने के लिए उसे अपने साथ लिया होगा।

विशेष—(१) प्रस्तुत दर्पण की कल्पना में कोई उत्प्रेक्षा ही नहीं है अपितु साथ ही एक सहेतुक और सरस भाव-गाम्भीर्य भी है। दर्पण नें राधा और कृष्ण दोनों का ही मुख दोनों को देखते रहने में सहायता प्रदान की है। और साथ ही कृष्ण को यह बहाना भी मिल गया कि तुम देखती रहो कि वेणी ठीक से गुँथ गई है या नहीं।

(२) काव्यलिंग अलंकार है। अनुमान पर आधारित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तातें मंजुल मुकुर सुकर लै बाल दिखायो।
श्रीमुख को प्रतिबिम्ब सखी तब सनमुख आयो ॥२८॥
धन्न कहत भईं ताहि नाहि कछु मन में कोपीं।
निरमत्सर जे संत तिलकि चूड़ामणि गोपीं ॥२९॥

शब्दार्थ—सुकर=सुन्दर हाथ। श्रीमुख=लक्ष्मी का मुख, यहाँ लक्षणा से राधा का मुख होगा क्योंकि राधिकाजी को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। या इसका अर्थ सुन्दर, शोभायुक्त मुख भी हो सकता है। सनमुख=समक्ष, सामने। निरमत्सर=मत्सर-रहित, द्वेषभाव रहित।

प्रसंग—गोपियाँ दर्पण को देखकर राधा के ऊपर कुपित नहीं हुईं क्योंकि वे निरमत्सर संत-समाज में श्रेष्ठ मानी जाती रही हैं।

व्याख्या—इसीलिए श्रीकृष्ण ने उस सुन्दर दर्पण को अपने सुन्दर हाथ में लेकर राधिकाजी को दिखाया तो राधिकाजी के छवि-सम्पन्न मुख का प्रतिबिम्ब उनके समक्ष आ गया। ये समस्त गोपियाँ अपनी सखी राधिका को धन्य कहने लगीं। उसपर कुपित नहीं हुई क्योंकि ये द्वेष-भाव रहित या सन्त-समाज की चूणामणि थीं अर्थात् ये द्वेषभाव-रहित साधु-समाज में श्रेष्ठ मानी जाती हैं।

विशेष—(१) गोपियों और लौकिक प्रेमिकाओं में अन्तर यहाँ स्पष्ट हो जाता है। सामान्य प्रेमिकाएँ प्रियतम के प्रति तो मान रखतीं ही, इस बात को जानकर साथ ही उस नायिका के साथ भी सपत्नीकभाव स्थापित कर उससे द्वेष करने लगतीं।

(२) काव्यलिंग और अनुप्रास अलंकार हैं।

इन नीके आराधे हरि ईश्वर बर जोई।
तातें निधरक अधर सुधारस पीवत सोई ॥३०॥
आगें चलि पुनि तनक दूरि देखी सो ठाढ़ी।
जासों सुन्दर नन्द कुँअर पिय अति रति बाढ़ी ॥३१॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ राधिका के विषय में सोचती हुई आगे बढ़ीं तो स्वयं राधिकाजी उन्हें आगे खड़ी मिलीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—गोपियाँ कहने लगीं—उन्होंने (राधिका ने) उन्हें ईश्वर और अपने पति के रूप में मानकर उनकी भली प्रकार आराधना की है इसीलिए निश्चिन्त होकर वह उनके अधरों के अमृत-रस का पान करती रहती हैं। फिर आगे चलकर थोड़ी ही दूर पर उन्होंने राधिकाजी को खड़ा देखा जिसके प्रति सुन्दर नन्दकुमार के मन में अत्यन्त प्रेम बढ़ा था।

विशेष—काव्यलिंग अलंकार है।

गोरे तन की जोति छूटि छबि छाय रही बर।
मानहुँ ठाढ़ी कुँअरि सुभग कंचन अवनी पर ॥३२॥
जनु घन तें बिजुरी मानिनि तनु काछैं।
किधौं चन्द्र सों रूसि चन्द्रिका रहि गइ पाछैं ॥३३॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—राधिकाजी के सौंदर्य की प्रशंसा प्रस्तुत पंक्तियों में है।

व्याख्या—उसके (राधा के) गोरे शरीर से दीप्ति छूटकर पृथ्वी पर इस प्रकार छवि छहरा रही थी कि ऐसा लगता था मानो साक्षात् कंचन की ही कोई सुन्दर कुमारी पृथ्वी पर खड़ी हो। अथवा वह ऐसी लगती थी मानो वन-माला से विजली अलग होकर मानिनी की भाँति खड़ी हो या फिर चन्द्रमा से रुष्ट होकर चाँदनी पीछे रह गई हो।

विशेष—दोनों उत्प्रेक्षाओं में एक संयमित औचित्य की स्थापना कवि ने की है। विना घन के विजली का सा रूप अहह ! क्या कहना है इस उत्प्रेक्षा के लिए दूसरी उत्प्रेक्षा और भी अधिक अर्थ गाम्भीर्य लिए हुए हैं। चाँदनी के विना चन्द्रमा काला ही दिखाई देगा। इससे कृष्ण और राधा का एक-दूसरे के समग्र व्यक्तित्वों में घुल जाना भी द्योतित होता है। इसीलिए शायद बिहारी ने लिखा है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जातन की झाइं परै स्याम हरित दुति होइ ॥

(२) उत्प्रेक्षा और सन्देह अलंकार हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नयननि तें जलधार हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाई न सकति बास-बस मुख ढिग आवत ॥३५॥
'क्वासि क्वासि पिय महाबाहु' यों वदति अकेली।
महाविरह की धुनि सुनि रोवत खग द्रुम-बेली ;

शब्दार्थ—क्वासि=कहाँ हो ? शेष सरल हैं।

प्रसंग—राधा की कृष्ण-वियोग में हुई म्लान दशा का वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या—उसके नेत्रों से बहती हुई आँसुओं की धारा वक्षस्थल पर सुशोभित हार को भिगोती हुई पृथ्वी की ओर दौड़ती है। वह स्वयं अपनें शरीर की गंध के कारण समीप आए भँवरों को भी अपने मुख के पास से नहीं उड़ा सकती। 'हे महाबाहो ! प्रियतम ! तुम कहाँ हो' तुम कहाँ हो !' इस प्रकार अकेली चीख रही है। उसकी इस महा विरह की पुकार-भरी स्वर-लहरी को सुनकर पक्षी, वृक्ष और लताएँ सभी साथ-साथ रो रहे हैं।

विशेष—(१) कतिपय लोग आपत्ति उठा सकते हैं कि नन्ददासजी ने यह ब्रजभाषा में संस्कृत का 'क्वासि' शब्द क्यों रख दिया। इसके उत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि संस्कृत देववाणी है और राधा तथा कृष्ण भी देवी-देवता थे और माने जाते हैं। इसीलिए उनके मुख से ये शब्द निकलना पात्रानुकूल भाषा होगी। इसीके साथ यह भी कहा जा सकता है कि विरह की अत्यधिक व्याकुलता के वेग को दिखाने के लिए अधिक लम्बी शब्दावली 'कहाँ हो' की अपेक्षा संक्षिप्त 'क्वासि' अधिक अच्छा और उपयुक्त है। दूसरी बात यह है कि नन्ददास के समय में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जाता था। तुलसी को ही लीजिए—

(१) "इति वदति तुलसीदास" में 'इति वदति' और (२) 'कहहु सुखेन यथा रुचि जेही' में सुखेन और यथारुचि इस बात के प्रमाण हैं।

(२) संक्षेप में बहुत बड़ा भाव प्रस्तुत पंक्तियों में भर दिया गया है।

(३) 'क्वासि क्वासि' में वीप्सालंकार है। कारक दीपक भी है।

दौरि भुजनि भरि लईं सबनि लै लै उर लाई।
मनहुँ महा निधि खोइ मध्य आधी निधि पाई ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जित तित तैं सब अहुरि बहुरि जमुना तट आई।
जहं नंद-नंदन जग-बंदन पिय लाड़ लड़ाई ॥३७॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—राधा को इस प्रकार विरह-व्यथिता देखकर अन्य गोपियों ने साहस बँधाने के उद्देश्य से कृष्ण की ही प्राप्ति समझकर भुजाओं में भरकर छाती से लगा लिया और उसे फिर यमुना के किनारे ले आईं।

व्याख्या—सभी ने राधा को दौड़कर भुजाओं में भर लिया और सभी ने उसे उसी प्रकार अपने हृदय से लगाया मानो कोई बहुत बड़ी निधि खोकर कोई आधी निधि प्राप्त कर ली हो और फिर सब-की-सब इधर से सिमट-कर फिर यमुना तट पर चलीं आईं—उसी स्थल पर आ गई जहाँ राधा के साथ उसके प्रियतम नन्द-नन्दन संसार के द्वारा वन्दनीय श्रीकृष्ण ने प्यार किया था।

विशेष—पुनरुक्ति प्रकाश और कारकदीपक अलंकार हैं।

तृतीय अध्याय

कहन लगीं अहो कुँवर कान्ह ब्रज प्रकटे जब तें।
अवधि भूत इंद्रादि इहाँ क्रीड़त हैं तब तें ॥१॥
नैन-मूँदिबो महा शस्त्र लै हाँसी हाँसी।
मारत हौ कित सुहथ नाथ बिनु मोल की दासी ॥२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ कृष्ण के कारण ब्रज की बढ़ी शोभा के साथ अपनी स्थिति पर विचार करती हैं—

व्याख्या—सभी गोपियाँ कहने लगीं कि जब से ये कुँवर श्रीकृष्ण ब्रज में उद्भूत हुए हैं तभी से यह ब्रज प्रदेश शोभा की अवधि ही बन गया है और उसी समय से यहाँ इन्द्रादि देवगण नित्य-प्रति खेलते रहते हैं। परन्तु हे नाथ! तुम यह हँसी ही हँसी में नेत्रों को मूँदने की क्रियारूपी अस्त्र लेकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम विना मोल की दासियों को क्यों मार रहे हो।

विशेष—(१) किसी की रक्षा करने के बाद उसे दुःख दे-देकर मारना उचित नहीं होता—

जाकी रक्षा करिय ताहि पुनि नहीं दुख दीजै।

इस दृष्टि से भी कृष्ण के लिए यह सब उचित नहीं था। दूसरे कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर देनेवाली गोपियाँ अपने-आपको उनकी दासी ही मानती हैं और जब कृष्ण का यह कहना है कि—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

तो फिर यह व्यवहार विना मोल की दासियों के साथ उचित नहीं था परन्तु औचित्य इसलिए है कि भक्त के मन के अहंकार को दूर करने के लिए उसका होना आवश्यक है।

(२) 'हाँसी हाँसी' में वीप्सालंकार है।

विष तें जल तें ब्याल अनल तें चपला झर तें।
क्यों राखी, नहीं मरन दई नागर, नगधर तें॥३॥
जब तुम जसुदा-सुवन भये पिय अति इतराने।
विश्व कुशल के काज विधिहिं बिनती कै आने॥४॥

शब्दार्थ—ब्याल=सर्प। अनल=आग। चपला झरतें=बिजली की झरपों से। नगधर=पर्वत को धारण करनेवाले अर्थात् गिरिधारी।

प्रसंग—श्रीकृष्ण को उपालंभ देती हुई गोपियाँ कहती हैं—

व्याख्या—हे चतुर गिरिधारी प्रियतम, तुमको यदि इसी प्रकार अपने विरह में ही मारना था तो फिर तुमने विष, जल, ब्याल और अग्नि इन सभी से हमारी क्यों रक्षा की थी? मरने क्यों नहीं दीं? तुम यशोदा के पुत्र क्या हो गए हो, प्रिय जू बहुत इतराने लगे हो। तुम यह क्यों भूले हुए हो कि तुम्हें नन्द बाबा विधाता से प्रार्थना करके संसार के कल्याण हेतु लाए थे।

विशेष—(१) कतिपय कृष्ण-लीलाएँ यहाँ अन्तर्कथा के रूप में गूँथी गई हैं।

(२) द्वितीय भाग में मौलिक सूझ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) अनुप्रास और वक्रोक्ति अलंकार हैं।

अहो मीत, अहो प्राननाथ यह अचरज भारी।
अपननि जौं मरिहौ करिहौ काकी रखवारी ।।५।।
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन में।
सिल त्रिन कंटक अटकल कसकत हमरे मंन में ।।६।।

शब्दार्थ—अपननि=स्वजनों को। मरिहौ=मारोगे। काकी=किसकी। शेष सरल हैं।

प्रसंग—गोपियाँ यहाँ अपने कृष्ण के व्यवहार में तुलनात्मक दृष्टि से आश्चर्य प्रकट करती हैं—

व्याख्या—जब तुम अपने कोमल चरणों को धरकर वन में गोचारण के लिए निकलते थे तो पत्थर (कंकड़) तिनके और काँटे हमारे मन में कसकते थे किन्तु इसके विपरीत तुम्हारा यह निष्ठुर व्यवहार है; (हमें क्या किसीको भी नहीं रुचेगा) बड़े आश्चर्य की बात है कि हे प्राणनाथ, तुम यदि अपने लोगों को ही मारोगे तो फिर किसकी रक्षा करोगे।

विशेष—(१) आमतौर पर अपने लोगों की रक्षा की जाती है और शत्रुओं का संहार किया जाता है; परन्तु यहाँ तो कृष्ण का उल्टा ही व्यवहार है। वे तो अपने ही लोगों को विरह-दुःख देकर मार डाल रहे हैं।

(२) यहाँ आत्मा का परमात्मा के प्रति एक उपालंभ भी है कि तुम्हारा दुःख-दर्द हमें ज्ञात हो जाता है परन्तु हमारा दुःख तुम्हें ज्ञात नहीं होता।

(३) असंगति अलंकार है।

प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरुह पिय के।
कहा घटि जैहै नाथ हरत दुख हमरे हिय के ।।७।।
फनी फनन पर अरपे डरपे नहिंन नैकुं तब।
छबिली छातिन धरत डरत कत कुँवर कान्ह अब ।।८।।

शब्दार्थ—चरन सरसीरुह=चरण-कमल। मनोरथ करन=प्राप्ति के लिए इच्छुक। फनी=फणीन्द्र=कालिया नाग। अरपे=हटपूर्वक अड़ गए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—गोपियाँ कहती हैं कि हम तुम्हारे चरणाम्बुजों को प्राप्त करने के लिए इच्छुक हैं। तुमने उनसे भयंकर नाग के फन पर नर्तन किया तो फिर हमारे वक्षस्थलों पर रखने में क्यों डरते हो।

व्याख्या—हम प्रेमीजन अत्यन्त नम्र हैं और साथ ही साथ तुम्हारे चरणाम्बुजों की अभिलाषिणी हैं। हे नाथ ! तुम यदि हमारे हृदय के कष्टों का निवारण कर लो तो तुम्हारा क्या घट जाएगा। तुम एक बार जब कालिया नाग के फनों पर अड़कर नृत्य करने लगे थे तो तनिक से भी डरे नहीं, परन्तु अब न जाने क्यों इन छबीली गोपियों की छातियों पर उन्हें रखने में डर रहे हो।

विशेष—रूपक और अनुप्रास अलंकार हैं।

जानत हैं हम तुम जु डरत व्रजराज-दुलारे।
कोमल चरन-सरोज उरोज कठोर हमारे ॥९॥
हरें हरें धरि पीय हमहिं तौ प्रान-पियारे।
कत अटवी महिं अटत गड़त तृन कूटन न्यारे ॥१०॥

शब्दार्थ—जु=जिस कारण से। डरत=डरते हो। उरोज=कुच, वक्ष-स्थल, स्तन। हरेंहरें=धीरे-धीरे। तौ=तुम।

प्रसंग—गोपियाँ अपने आप ही एक कारण कल्पित करती हैं कि तुम्हारे चरण कोमल हैं और हम लोगों के कुच कठोर हैं इसीलिए नहीं आते हो किन्तु ये वन में पैरों में चुभनेवाले कुश, काँसादि से तो कोमल हैं ही—

व्याख्या—हे व्रजराज, नन्द के दुलारे, हम यह बात भली-भाँति जानती हैं कि तुम किसलिए नहीं आते हो। कारण यही है कि तुम्हारे चरण अत्यन्त कोमल हैं और हमारे उरोज कठोर हैं इसीलिए पैरों में चोट लग जाने की कल्पित आशंका से डरते हो, किन्तु फिर भी हे प्रियतम ! तुम हमें प्राणाधिक प्रिय हो, धीरे-धीरे चरण रख लेना और फिर तुम वन में जहाँ तुम्हारे पाँवों में कुश, काँस इत्यादि चुभते रहते होंगे व्यर्थ ही तो घूमते रहते हो।

विशेष—(१) यहाँ गोपियाँ कुच-काठिन्य की बात कहकर अपने नवयौवन की बात कहती हैं और कृष्ण को आकर्षित किया चाहती हैं। रूप-गर्विता के भाव का भी सुन्दर आभास अत्यन्त चातुरी के साथ कराया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) गोपियाँ पद-स्पर्श तो नहीं यहाँ उरोजों को श्रीकृष्ण के द्वारा कर स्पर्श की अभिलाषिणी हैं। एक उपालंभसामी यहाँ हैं।

(३) रूपक, काकुवक्रोक्ति और वीप्सालंकार हैं।

चतुर्थ अध्याय

यहि विधि प्रेम-सुधानिधि में अति बढ़ी कलोलैं।
ह्वै गईं विह्वल बाल लाल सों अलवल बोलैं ॥१॥
तब तिनहीं में तें निकसे नँद नंदन पिय यौं।
दृष्टि बंध कै दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ॥२॥

शब्दार्थ—प्रेम-सुधा निधि =प्रेम रूपी अमृत का सागर। कलोलैं= क्रीड़ाएँ। अलवल=अटशंट, ऊटपटांग। दृष्टि बंधकै=दृष्टि को बाँधकर। यह एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसे नट या सपेरे बहुधा प्रयोग में लाया करते हैं। इसमें हमें अघटित कार्य भी घटित से और घटित कार्य भी अघटित से दिखाई देते हैं।

प्रसंग—गोपियाँ जब प्रेम विह्वल हो गईं तो फिर श्रीकृष्ण को प्रकट होना पड़ा—

व्याख्या—इस प्रकार प्रेमामृत-सिन्धु में क्रीड़ाएँ बढ़ने लगीं और जब गोपियाँ अत्यन्त प्रेम-विह्वल होकर ऊटपटाँग कहने-सुनने लगीं तो श्रीकृष्ण नटवर की भाँति उनकी दृष्टियों को बाँधकर उन्हीं लोगों में से निकलकर प्रगट हो गए।

विशेष—(१) यहाँ प्रतीक्षित ध्यान का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी को अँग्रेजी में (Expectant Attention) कहते हैं। सचमुच भाव-प्राबल्य की बात यहाँ सही उतरी है। तुलसीदास जी लिखते हैं—

जहि पर जाकर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू ॥

कालिदास जी लिखते हैं—

'मनोरथनामगतिर्न विद्यते'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके लिए आवश्यकता है गोपियों की सी तल्लीनता की।

(२) कृष्ण की लीला के पुरुषोत्तम और योगेश्वर दोनों रूप यहाँ प्रदर्शित हैं।

(३) 'नटवर' शब्द में भाव-व्यंजक मुद्रालंकार है। इसके अतिरिक्त रूपक और उदाहरण अलंकार है।

पीत बसन बनमाल बनी मंजुल मुरली हथ।
मंद मधुरतर हँसत निपट मनमथ के मनमथ ॥३॥
पियहिं निरखि तिय बृंद उठी सब इकै बार यों।
परि घट आए प्रान बहुरि उझकत इंद्री ज्यों ॥४॥

शब्दार्थ—हथ=हाथ में। मनमथ=कामदेव। मनमथ=मन को मथने वाले। उझकत=चैतन्य हो उठना।

प्रसंग—कृष्ण का कैसा रूप था प्रकट होते समय इसे बताते हुए कवि आगे बताता है कि गोपियों को किस प्रकार की और कितनी खुशी हुई—

व्याख्या—पीताम्बर वनमाला गले में और हाथ में सुन्दर मुरली को लिए हुए थे। वे कंदर्भ के दर्प को भी दलित करने वाले श्रीकृष्ण मंद-मंद और पहले से भी अधिक मधुर हँस रहे थे।

प्रियतम श्रीकृष्ण को देखकर गोपियों को ठीक उसी प्रकार की प्रसन्नता हुई और एक ही साथ वे सब की सब उठ खड़ी हुईं जैसे एक बार प्राण पुनः वापस आ जाने पर शरीर में इन्द्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं।

विशेष—(१) श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'

गोपियाँ कृष्ण का यही रूप चाहती थीं। इसी रूप को बिहारी की गोपियाँ या स्वयं बिहारी भी चाहते हैं—

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन ब सो सदा बिहारीलाल ॥

(२) भाव सन्धि का यह उदाहरण देखने योग्य है यहाँ गोपियों के मन में एक ही साथ कई भाव उठे हैं, हर्ष, आश्चर्य, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और आदर सत्कार के भाव हैं। 'पियहिं' शब्द से प्रेम, सत्कार और हर्ष के 'इकैबार' से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्चर्य तथा 'उठीं' से श्रद्धा-भक्ति की भावनाएँ प्रकट होती हैं।

(३) यमक और उदाहरण अलंकार हैं।

महा छुधित कों जैस असन सो प्रीति सुनी है।
ताहू तें सतगुनी सहस गुनि कोटि गुनी है ॥५॥
कोउ चटपटि सों उर लपटीं कोउ कर बर लपटीं।
कोउ गल लपटी कहति भलैं भलैं कान्हर कपटी ॥६॥

शब्दार्थ—असन=भोजन। चटपटिसौं=आतुरता से, झटपुट।

प्रसंग—कृष्ण को देखते ही गोपियों की चेष्टाओं का वर्णन प्रस्तुत छन्दों में देखिए—

व्याख्या—जिस प्रकार महान क्षुधातुर किसी व्यक्ति को भोजन से प्रेम सुना जाता है उससे भी सात गुना, सौगुना, हजार गुना और करोड़ों गुना प्रेम गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम था। उसी के कारण कोई तो आतुर होकर झटपट कृष्ण के वक्ष से कोई श्रेष्ठ बहुपाश से कोई गले से लिपटकर कहने लगीं कि कृष्ण तुम बहुत कपटी हो।

विशेष—(१) 'भलैं' का लाक्षणिक अर्थ बहुत है।

(२) अनुप्रास के अतिरिक्त पुनरुक्ति प्रकाश तथा गणनालंकार भी है।

कोउ नगधर बर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नवघन तें सटकि दामिनी छटा सुं अटकी ॥७॥
बैठे पुनि तिहिं पुलिन परम आनन्द भयो है।
छबिली अपने छादन छबि सों बिछा दयो है ॥८॥

शब्दार्थ—सटकि=खिसककर। दामिनी=बिजली। छटासु=दीप्ति से। अटकी=उलझ गई हो। छादन=वस्त्र।

प्रसंग—गोपियों की चेष्टाओं को देखकर कृष्ण यमुना के किनारे पर उन्हीं के बिछाए हुए वस्त्रों पर बैठ गए—

व्याख्या—कोई तो गिरिधारी सुन्दर प्रियतम के पीत पट को ही पकड़कर रह गई। उस समय ऐसा लगा मानो बिजली नवीन घन से विमुक्त होकर किसी छवि से अटक गई हो। फिर श्रीकृष्ण यमुना के किनारे उस आसन पर परम आनन्द के साथ बैठ गए जिसे गोपियों ने अपने वस्त्र बिछाकर बना दिया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

एक एक हरि देव सबहि आसन पर बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे ॥९॥
ज्यों अनेक जोगीस्वर हिय मे ध्यान धरत हैं।
इकहि बेर इक मूरति सब कों सुख बितरत हैं ॥१०॥

शब्दार्थ—सबहि=सभी। इकहि बेर=एक ही समय में। वितरत हैं=बाँटती हैं।

प्रसंग—कृष्ण ने सभी गोपियों को आनन्दित किया—

व्याख्या—श्रीकृष्ण एक-एक करके क्रमानुसार सभी आसनों पर बैठे और इस प्रकार उन्होंने सभी के मनमें जिस प्रकार के भी मनोरथ उत्पन्न हुए वे पूरे किए। जिस प्रकार अनेक योगीश्वरों के द्वारा हृदय में ध्यान करने पर आनन्द की प्राप्ति होती है ठीक वैसा ही आनन्द अकेले ही कृष्ण ने उन समस्त गोपियों को एक ही क्षणमें प्रदान किए। या जिस प्रकार अनेक योगीश्वरों को हृदय में ध्यान करने पर एक ही ब्रह्ममूर्ति एक ही समय में आनन्द प्रदान करती है ठीक वैसे ही एक ही समय में कृष्णने इन समस्त गोपियों को आनन्दित किया।

विशेष—(१) कृष्ण की योगमायामयी लीला का चित्रण किया गया है। हरि वस्तुत: 'अनेक रूप रूपाय' हैं ही। यहाँ एकेश्वरवाद के सिद्धान्त के साथ ही अनेकेश्वरवाद का भी सामंजस्य है। इसीको प्रतिबिंबवाद का रूप देकर भी रखा गया है। राम भी इसी प्रकार एक ही समय में समस्त अयोध्यावासियों से मिल लिए थे। मनोविज्ञान इसे विचार-भाव-जन्य मानता है। विचार-प्राबल्य से मनुष्य मन में स्वकल्पित रूप को प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त करता है। अनीश्वरवादी मनोविज्ञान के आधार पर योगी के ब्रह्म दर्शन को स्व-विचार-प्राबल्य-कृत मानते हैं, वास्तविक नहीं। भागवत के आधार पर ही भक्ति-सिद्धान्तों में इसे कृष्ण-लीला के अन्तर्गत माना जाता है।

(२) उदाहरण अलंकार है।

कोटि कोटि ब्रह्मांड जदपि इकली ठकुराई।
ब्रज-देविन की सभा साँवरे अति छवि पाई ॥११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्यों सब गोपिन सनमुख सुन्दर श्याम बिराजैं ।
ज्यों नवदलनि मंडलहिं कमल कणिका भ्राजैं ॥१२॥

शब्दार्थ—ठकुराई=प्रभुता । कणिका=कमल कोष ।

प्रसंग—समस्त ब्रह्मांड के छत्रपति होते हुए भी श्रीकृष्ण को गोपियों की सभा में ही शोभा प्राप्त हुई।

व्याख्या—यद्यपि श्रीकृष्ण की करोड़ों ब्रह्मांडों में एकछत्र प्रभुता थी, फिर भी उन्होंने ब्रजवासिनियों अर्थात् गोपियों की सभा में ही अत्यन्त सुन्दरता को प्राप्त किया । उस ससय सुन्दर श्रीकृष्ण उन समस्त गोपियों के बीच उसी प्रकार बैठे जैसे नवीन पंखुड़ियों के बीच कमलकोष सुशोभित होता है ।

विशेष—(१) प्रस्तुत दोनों छन्दों में कृष्ण का विराट और सुन्दर रसिक रूप व्यंजित हैं । साथ ही यह भी कहा गया है कि उनकी महत्ता, सत्ता ब्रज-देवियों में ही सुन्दर लगती है और प्रकट भी होती है । 'कोटि-कोटि ब्रह्मांड' से तो कृष्ण का प्रभुत्व एवं शौर्य प्रकट होता है और दूसरी पंक्ति से उनका शील एवं सौन्दर्य ।

(२) नारी और पुरुष का अभिन्न सम्बन्ध जो तुलसीदास जी ने—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी ।
तैसेई नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

से अभिव्यक्त किया है वैसे ही यहाँ नन्ददासजी ने स्पष्ट किया है ।

(३) पुनरुक्ति प्रकाश, विरोधाभास, उदाहरण और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं ।

बूझन लगीं नवल बाल नंदलाल पियहिं तब ।
प्रीति रीति की बात मनहिं मुसकाति जाति सब ॥१३॥
इक भजते कों भजैं एक अनभजतनि भजहिं ।
कहो कान्ह ते कवन आहिं जे दुहुँअनि तजहीं ॥१४॥

शब्दार्थ—बूझनलागीं=पूछने लगीं । भजते=ध्यान करते हुए को । अनभजतति=ध्यान न करते हुए को । दूर न रहनेवाले, या न भागनेवाले । आहि=हैं ।

प्रसंग—गोपियाँ कृष्ण को प्रीति की रीति के विषय में पूछती हैं कि कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग स्वार्थवश और कुछ लोग निःस्वार्थ होकर तुम्हें भजते हैं परन्तु वे कौन हैं जो दोनों से मुक्त होकर भजते हैं ?

व्याख्या—सभी गोपियाँ जो नव-यौवना थीं, मन ही मन मुस्कराती हुईं कृष्ण से पूछने लगीं कि हे प्रियतम ! कुछ लोग तो उन्हें भजते हैं जो उन्हें भजते हैं तात्पर्य कुछ लोग तो किसी का स्वार्थवश ध्यान करते हैं और कुछ लोग न ध्यान करनेवालों का ध्यान करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि निःस्वार्थ होकर भजते हैं। फिर वे कौन लोग हैं जो दोनों से अपने-आपको मुक्त रखते हुए भजते हैं।

विशेष—दार्शनिक सिद्धान्तों का वही भाव जो हमें भागवत में इस प्रसंग में मिलता है, वही यहाँ नन्ददासजी ने अपनी शैली में रखा है। किन्तु कृष्ण, इसका उत्तर केवल प्रेम के पक्ष में ही लेकर देते हैं। प्रेमीजन का प्रियतम दो प्रकार का हो सकता है—स्वमीत और दूसरा परमीत। इन दोनों से मुक्त होकर जो तीसरा है उसीके भजनेवाले के प्रेम के विषय में प्रश्न किया गया है। यहाँ उपालंभ भी है। कृष्ण ने परकीया गोपियों और स्वकीया राधा दोनों को ही छोड़ दिया था, अतः व्यंग्य के साथ गोपियाँ पूछती हैं कि तुम कौनसे नायक हो।

(२) पद-विन्यास अत्यन्त मनहर चातुर्य के साथ रखा गया है जिसमें दार्शनिक भावों का समावेश शृङ्गार रस के माध्यम से किया गया है। यहीं सगुण और निर्गुण ब्रह्म की चर्चा को भी हम ले सकते हैं। यही भाव भागवत में भी मिलता है।

(३) अनुप्रास और यमक अलंकार हैं।

जदपि जगत-गुरु नागर जसुमति-नंद-दुलारे।
पै गोपिन के प्रेम अग्र अपने मुख हारे ॥१५॥
तब बोले पिय नव किसोर हम ऋनी तिहारे।
अपुने हिय तें दूरि करौ सब दोस हमारे ॥१६॥

शब्दार्थ—पै=किन्तु, परन्तु। ऋनी=ऋणी।

प्रसंग—जगद् गुरु होकर भी कृष्ण गोपियों के विशुद्ध पवित्र प्रेम के समक्ष अपनी पराजय स्वीकार करते हैं और अपने-आपको गोपियों का बहुत ऋणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानते हैं--

व्याख्या—यद्यपि यशोदा और नंद के दुलारे श्रीकृष्ण संसारभर के गुरु हैं और परम प्रवीण हैं, फिर भी गोपियों के प्रेम के आगे अपने ही मुख से अपनी पराजय स्वीकार करने लगे। तव नवीन किशोर वयवाले प्रियतम श्रीकृष्ण गोपियों से बोले कि हम तुम लोगों के बहुत ऋणी हैं; इसीलिए हमारे समस्त अवगुणों को अपने हृदयों से निकालकर दूर कर दो।

विशेष—(१) यह भाव भी भागवत से ही लिया गया है। भगवान् स्वयं ही इस प्रकार यहाँ अपने अपराधों की क्षमा-याचना सी करते हैं और भक्त के पद को भगवान् से ऊपर उठाकर रख देते हैं। कहा भी है—

राम तैं अधिक राम करि दासा।

प्रेमीजनों की कोटि देखिए—

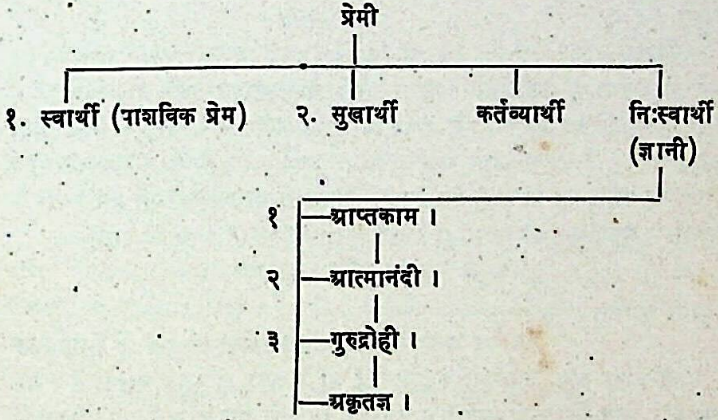

(२) अनुप्रास अलंकार है।

कोटि कलप लगि तुम प्रति-प्रति उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरुनी उऋन न होउँ तबौ तौ ॥१७॥
सकल विश्व अप बस करि मो माया सोहति है।
मोह मई तुम्हरी माया सोइ मोहिं मोहति है ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—कोटि कलप लगि=करोड़ों कल्पों तक। तुम प्रति=तुम्हारे प्रति। प्रति उपकार=तुम्हारे इस उपकार के बदले में उपकार (करूँ तो)। तवौतौं=तुम्हारे ऋण से तब भी उऋण नहीं हूँगा। अपबस करि=अपने वश में करके।

प्रसंग—गोपियों के उपकार की महत्ता को बतलाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी माया समस्त संसार को अपने वश में करती है और तुम्हारी माया मुझे वशीभूत किए रहती है—

व्याख्या—हे गोपियो! यदि मैं करोड़ों कल्पों तक तुम्हारे प्रति उपकार करता रहूँ तो भी हे मन को हरण कर लेनेवाली तरुण रमणियो! मैं तुम्हारे इस ऋण से उऋण नहीं हो सकूँगा। अर्थात् तुम्हारे प्रेम का बदला नहीं चुका सकूँगा। मेरी माया समस्त विश्व को अपने वश में करके स्वयं सुशोभित होती है किन्तु तुम्हारी प्रेममयी माया उसे और मुझे दोनों को ही विमोहित किए रहती है।

विशेष—(१) प्रेम एक ऐसा सरोवर है जिसमें अत्यन्त सरस और निर्मल जल भरा हुआ है। जो लोग लोक-वेद की गैल चलकर इसमें पाँव रखते हैं वे इसके जल को गंदा ही करते हैं। गोपियों ने लोक-वेद के बन्धनों को तोड़ दिया था इसीलिए वे कृष्ण और उनकी माया दोनों को वशीभूत कर सकी थीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम यदि विशुद्ध और दृढ़ हो तो हम माया के बंधनों से अपने-आपको मुक्त रख सकते हैं। भगवान् के लिए लिखा है—

प्रेम ते प्रगट होंहि भगवाना।

और भी,

भगवान् भक्त के वश में होते आए।

भक्ति का मार्ग उपासना का मार्ग है जो भावना क्षेत्र पर चलता है। यह कर्म और ज्ञान दोनों ही मार्गों से पृथक है। इसमें निश्छल प्रेम परमावश्यक है और यदि वह है तो भगवद् प्राप्ति असंभव नहीं। आत्मा परमात्मा का सम्मिलन स्वतः सिद्ध सत्य है।

(२) तुलना देखिए—

मो माया बस कीन, सकल विश्व पल एकही।
हौं बस इन गोपीन, भक्त बड़े भगवान् तें॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सचमुच ही भक्त इस प्रकार भगवान् से बड़े ठहरते हैं।

(३) 'तुम प्रति-प्रति उपकार' में पुनरुक्त दोष-सा लगता है। किन्तु वस्तुत: यहाँ है यमक अलंकार। इसके अतिरिक्त अनुप्रास है।

पञ्चम अध्याय

सुनि पिय के रस बचन स्रबनि गँसि छाँड़ि दयौ है।
विहँसि आपने उर सों लाल लगाय लयौ है ॥१॥
कोटि कलपतरु लसत बसत पद पंकज छाँही।
कामधेनु पुनि कोटि-कोटि बिलुठत रज माँही ॥२॥

शब्दार्थ—गँसि=क्रोध, आक्रोश। छाँड़ि दियौ है=छोड़ दिया। आपने उरसों=अपने हृदय से या वक्षस्थल से।

प्रसंग—प्रियतम श्रीकृष्ण के रस-भरे वचनों को सुनकर गोपियों ने अपने मन का आक्रोश त्याग कर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया—

व्याख्या—प्रियतम के इस प्रकार रस-भरे वचन सुनकर गोपियों ने अपने मन का आक्रोश छोड़कर, हँसते हुए उन्हें अपने हृदय से लगा लिया अर्थात् प्रसन्न होकर अपने आलिंगन में बाँध लिया।

जिसकी पद-कमल-छाया में करोड़ों कल्पवृक्ष बसते और सुशोभित होते हैं और उन्हींकी रज में करोड़ों कामधेनु लोटती रहती हैं, तात्पर्य यह है कि जिसके चरण-कमलों की परछाइँ कल्पवृक्षों के समान और पद-रज क़रोड़ों कामधेनुओं के समान अभीष्ट फलदायिनी है।

सो पिय भए अनुकूल तूल कोउ भयो न है अब।
निरबधि सुख को मूल सूल उनमूल करी सब ॥३॥
आरंभित अद्भुत सु रास उहि कमल-चक्र पर।
नमित न कितहूँ होइ सबै निरतत विचित्र बर ॥४॥

शब्दार्थ—अनुकूल भए=प्रसन्न हुए। तूल= रूई। उनमूलकरी=उखाड़ फेंकी। सूल=पीड़ाएँ, व्यथाएँ। कमल-चक्र=वह कमल-चक्र जो वहाँ मणिमय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बना हुआ था। इस शरीर के रस चक्रों में आनेवाले कमल-चक्र से भी तात्पर्य लिया जा सकता है किन्तु उपयुक्त पहला ही है।

प्रसंग—पूर्व छन्दों में बताए गए गुणोंवाले प्रियतम जब प्रसन्न हो गए तो कमल-चक्र पर रास रचाया गया।

व्याख्या—वही प्रियतम सानुकूल हो गए इसीलिए हमारे समान सौभाग्य-शालिनी अब कोई नहीं है। अब हमारे सुख के शूल-मूल का श्रीकृष्ण ने उन्मूलन कर दिया है। तत्पश्चात् उस मणिमय कमल-चक्र के ऊपर अद्भुत रास क्रिया को प्रारंभ किया गया। सभी विचित्र प्रकार से और श्रेष्ठता से नाँच रहे थे। कोई भी डिग नहीं रहा था।

विशेष—(१) कृष्ण सचमुच ही समस्त सुखों को प्रदान करनेवाले हैं। वे सच्चिदानन्द ब्रह्म के अवतार हैं और वह ब्रह्म—'सत्यंज्ञानमनंतम् ब्रह्म' है। यह भी संभव हो सकता है किसी व्यक्ति का चिंतित फल कष्ट प्राप्त करना हो तो वह भी कल्पवृक्ष से उसे उपलब्ध हो जाएगा किन्तु श्रीकृष्ण केवल सुखों को ही प्रदान करते हैं इसीलिए कल्पवृक्ष से श्रेष्ठ हैं।

(२) रासलीला का आनंद सुख के समय में ही भलीभाँति लिया जा सकता था इसीलिए श्रीकृष्ण ने पहले सभी को सुखी कर दिया ताकि वे उस रासक्रीड़ा में पूर्णतया तल्लीन होकर उसका आनन्दानुभव कर सकें।

(३) गोपियों के साथ कृष्ण ने रासलीला केवल कल्पवृक्ष के समान फलदायक वृक्ष के नीचे बने कमल चक्र पर ही नहीं की, अपितु गोपियों के शरीर में विद्यमान पद्मचक्र या सहस्र कमल के ऊपर भी प्रारम्भ की थी।

(४) यमक और अनुप्रास अलंकार हैं।

नव मर्कत-मनि स्याम कनक-मनिगन ब्रजबाला।
बृन्दाबन कों रीझि मनहुँ पहिराई माला ॥५॥
नूपुर, कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली ॥६॥

शब्दार्थ—मर्कत-मनि=एक प्रकार की मणि विशेष जो नीले रंग की होती है। रीझि=प्रसन्न होकर। करतल=हथेली, यहाँ ताली से तात्पर्य है।

प्रसंग—रास-क्रीड़ा के समय के वाद्ययंत्रों का वर्णन करते हुए कवि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहता है—

व्याख्या—श्रीकृष्ण नूतन मर्कतमणि के समान और समस्त गोपियाँ कनकनि मणियों के समान लग रहीं थीं। ऐसा लगता था मानो दोनों ने ही वृन्दावन को प्रसन्न होकर माला पहनाई हो।

नूपुर (पायल) किंकिणि (करधनी) ताली, मंजुल मुरली, मृदंग, उपंग और चंग इन सभी का स्वर मिलकर एक ही स्वर बन गया था।

विशेष—अनुप्रास की छटा दर्शनीय बन पड़ी है। साथ ही उत्प्रेक्षा भी सराहनीय है।

मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की सार भंवर गुंजार रली पुनि ॥७॥
तेसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की ॥८॥

शब्दार्थ—सरल है।

प्रसंग—कोमल वाद्य-यंत्रों की झंकार के साथ ही साथ अनुगूंज की मोहकता का वर्णन कवि करता है—

व्याख्या—कोमल मुरज की टंकार और उसके तारों की झंकार से मिली हुई ध्वनि तो उठ ही रही थी, उसमें मधुर यंत्र के सार तत्व के समान भ्रमरों की गुंजार भी मिली हुई थी। साथ ही मृदु-पद-संचालन, करतालों का शब्द तथा सुन्दर कुंडलों और हारों के हिलने से भी शब्द ध्वनित हो रहा था।

विशेष—ध्वन्यात्मकता विशेषत: द्रष्टव्य है।

साँवरें पिय संग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
मनु घनमंडल खेलत मंजुल चपला माला ॥९॥
चंचल रूप लतनि संग डोलति जनु अलि-सैनी।
छविली तियन के पाछें आछें विलुलित बेनी ॥१०॥

शब्दार्थ—निरतत=नृत्य करती हैं। मनु=मानो। अलि-सैनी=भौंरों की सेना या श्रेणी (पंक्ति) विलुलित=हिल रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—गोपियों के सौन्दर्य की चर्चा कवि करता है—

व्याख्या—साँवरे रंगवाले प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ चंचल गति से ब्रज-बालाएं नृत्य कर रही हैं। उस समय वे ऐसी लग रही थीं मानो घन-मण्डल (बादलों के समूह) से मंजुल बिजली की माला खेल रही हो। इन सुन्दर गोपियों के पीछे इनकी काली गुही हुई वेणी इस प्रकार हिल रही थी मानो चंचल स्थितिवाली लताओं के साथ भ्रमरों की पंक्तियाँ घूम रहीं हों।

विशेष—दोनों ही उत्प्रेक्षाएँ अत्यन्त सुन्दर बन पड़ीं हैं। साथ ही मौलिक भी हैं।

मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥११॥
कोउ सखि कर पर तिरप बांधि निरतत छबिली तिय।
मानहुं करतल फिरत लट्टू लखि लट्टू होत पिय ॥१२॥

शब्दार्थ—फरकनि=फड़फड़ाहट। पियरे पट की=पीताम्बर की। तिरप=एक मुड़ा या पट विशेष।

प्रसंग—नाचती हुई गोपियों का वर्णन

व्याख्या—इन गोपियों के साथ ही कृष्ण भी नाच रहे थे। उनकी मुस्कराहट, मयूर मुकुट एवं पीताम्बर की प्रकंपनता मेरे मन में बसी रहे (यही कवि की अभिलाषा है) कोई-कोई गोपी अपनी सखी के हाथों पर तिरप बाँधकर तात्पर्य एक विशेष मुद्रा में जब नाचती हैं तो ऐसी लगती हैं मानो हथेली पर लट्टू नृत्य कर रहा हो उसे देखकर प्रियतम श्रीकृष्ण लट्टू हो रहे हैं; तात्पर्य अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

विशेष—उत्प्रेक्षा एवं यमक अलंकार हैं।

कोउ नायक को भेद भाव लावन्य रूप सब।
अभिनय करि दिखरावत गावति गुन पिय के जब ॥१३॥
तब नागर नंदलाल चाहि चित चकित होत यों।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यों ॥१४॥

शब्दार्थ—अभिनय करि दिखरावत=नाटक करके दिखाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—कोई गोपी नायक या कृष्ण के रूप गुण, इत्यादि की कीर्ति को अभिनय के माध्यम से प्रकट करती है तो कृष्ण अत्यन्त विस्मय एवं हर्ष मनाते हैं।

व्याख्या—कोई गोपीं नायक या कृष्ण की भाव-भंगिमाओं, रूप लावण्य इत्यादि समस्त योग्यताएँ या गुण अभिनय करके दिखाती है और इसी प्रकार जब प्रियतम के गुण गाने लगती है तब चतुर नंदलाल उसकी ओर देखकर इस प्रकार चकित होते है जिस प्रकार जैसे कि कोई शिशु अपने प्रतिबिंब के वैभव को देखकर स्वयं अपने-आपको भूल जाता है। ध्वनि यही निकलती है कि इस गोपी का अभिनय इतना वास्तविकता के समीप था कि स्वयं कृष्ण को भी एकधा आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ा। वे सोचने लगे कि यह दूसरा कृष्ण कहाँ से यहाँ आ गया।

विशेष—(१) यह भाव भागवत का ही है। इसके पीछे एक दार्शनिक पृष्ठभूमि है। भगवान आप ही अपने प्रतिबिंब के साथ आत्म विस्मृति के साथ खेलता है। संसार के माया-मुकुर में प्रतिबिंब उसका पड़ा करता है। उसी में भूला हुआ वह खेला करता है। यहाँ प्रतिबिंबवाद का सुन्दर और सालंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(२) 'कोई नायक के भेदभाव' से दो तात्पर्य लिए जा सकते हैं। पहला तो लक्षण-ग्रंथों में आए नायक के भेदों में से कृष्ण किस कोटि के नायक हैं इसे कोई गोपी अभिनय से निर्धारित कर रही थी अथवा दूसरा अर्थ यही हो सकता है कि भाव-भेदों को अर्थात् तत्समय परिवर्तित उनके हृदय के भावों को या पृथक-पृथक गोपी के वश में होने पर उनके कैसे-कैसे भाव-भेद बनते हैं इसका वर्णन अभिनय के माध्यम से करती है।

(३) उदाहरण अलंकार है।

रीझि परस्पर वारत अंबर भूषन अंग के।
और तबहिं बनि रहत तहाँ अद्भुत रंग रंग के ॥ १५॥
कोउ मुरली संग रली रंगीली रसहिं बढ़ावति।
कोउ मुरली को छेंकि छबीली अद्भुत गावति ॥१६॥

शब्दार्थ—रीझि=प्रसन्न होकर। परस्पर=एक-दूसरे के ऊपर। वारति=

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

न्योछावर करती हैं। अंबर=वस्त्र। छैंकि=अन्यथा सिद्ध कर, अतिक्रमण कर, पीछे छोड़कर।

प्रसंग—उक्त अभिनय को देखकर गोपियाँ परस्पर वस्त्राभूषणादि न्योछावर करती हैं और कोई रसीली और सुरीली आवाज में गान छेड़कर मुरली को भी पराजित कर देती है—

व्याख्या—गोपियाँ आपस में ही प्रसन्न होकर वस्त्रों को और आभूषणों को न्योछावर करती हैं। और तत्काल ही वहाँ रंग-बिरंगे वस्त्र बनते जाते हैं। कोई गोपी सरस मुरली की सरसता को अपने स्वर से और अधिक बढ़ा देती है तो कोई उसे छेककर आगे बढ़ जाती है।

विशेष—(१) वर्णन की सजीवता अत्यन्त मोहक है। एक बिंब-सा हमारे समक्ष बन जाता है।

(२) व्यतिरेक अलंकार की व्यंजना है अन्तिम पंक्ति में।

ताहि साँवरो कुँअर रीझि हँसि लेत भुजनि भरि।
चुंबन करि सुख-सदन वदन तें दै तमोल ढरि॥१७॥
जग में जो संगीत नृत्य सुर नर रीझत जिहि।
सो ब्रज तियन को सहज गवन आगम गावत तिहि॥१८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—जो गोपी कृष्णाभिनय करनेवाली गोपी पर रीझकर वस्त्राभूषण न्योछावर करती है उसके साथ कृष्ण का तत्काल मधुर व्यवहार देखिए—

व्याख्या—उस गोपी को तत्काल श्रीकृष्ण ने हँसकर आलिंगन-बद्ध किया और उसके मुख का चुंबन कर उसके अनुकूल हो उसका मूल्य चुकाया। उसके कपोलों पर से पान की पीक ढल चली। कवि कहता है कि सुर नर सभी को रिझानेवाली लौकिक संगीत की रीति जिससे वेदादि गान करते हैं वही स्वभावतः ब्रज-बालाओं में सहज ही उपलब्ध है।

विशेष—(१) कृष्ण की गुण-ग्राहकता और चुकाया गया मूल्य दोनों ही सराहनीय हैं। उस गोपी के लिए इससे अमूल्य अन्य वस्तु कोई हो भी नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती थी। साथ ही गोपियों की संगीत-निपुणता की भी प्रशंसा की गई है।
(२) कारकदीपक अलंकार है।

जो ब्रज देवी निरतत मंडल रास महा छवि।
सो रस कैसे बरनि सके इहँ ऐसो को कवि ॥१६॥
राग रागिनी समुझत कौ बोलिबौ सुहायो।
सो कैसे कहि आवै जो ब्रज-देविन गायौ ॥२०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—उन व्रजदेवियों का नृत्य और गान कैसे करके सराहा जा सकता है जिनका सामान्य बोलना भी राग-रागिनी सा है।

व्याख्या—ब्रज की इन देवियों की रास में नृत्य करते समय जो छवि बन रही थी उसका वर्णन कर सकनेवाला ऐसा कौन-सा कवि है जो पूर्णतः समर्थ हो अर्थात् कोई भी कवि उस छवि का वर्णन करने में पूर्णतः समर्थ नहीं है। जिन व्रजदेवियों का सामान्य बोलना भी राग और रागनियों से पूर्ण होता है उन गोपियों के द्वारा गाये गए गान की प्रशंसा कैसे की जा सकती है।

विशेष (१) व्रजबालाओं को देवियाँ कहा गया है; अतः यह नितान्त आवश्यक हो जाता था कि उनके संगीत और सौन्दर्य दोनों में दिव्यता का आभास कराया जाता। वैसा कराया भी गया है। लौकिकता से परे गोपियों की पारलौकिकता एवं दिव्यत्व दोनों ही स्पष्ट हैं और गोपियों को मानवेतर सिद्ध किया गया है।
(२) काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
लटकि-लटकि वह नित्तंति कापै कहि आवै गति ॥२१॥
अद्भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै रह्यो सिला पुनि ॥२२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—प्रियतम के गले में भुजाएँ डालकर ब्रज-बालाएँ नृत्य-गान में मत्त हैं। उसीका वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—प्रियतम की ग्रीवा में अपनी भुजाएँ डालकर अर्थात् प्रियतम के गल बाँही डाले लटक-लटक कर नर्तन करते समय जो अतीव छवि वहाँ बढ़ी थी उसका वर्णन किस पर करते वन सकता है अर्थात् उसका वर्णन कोई नहीं कर सकता है।

उस समय अद्भुत रस की सृष्टि हुई और रास में गाए जानेवाले गीतों की ध्वनि सुनकर मुनिगण मोहित हो गए। इसका प्रभाव कुछ इस प्रकार का पड़ा कि जड़ शिलाएँ द्रवित होकर वह चलीं और जल जड़ होकर शिला के रूप में जम गया। तात्पर्य जो पत्थर हृदय थे उनके मन भी सरल हो गए और जो सरस हृदय वाले थे वे स्तब्ध रह गए पूर्णतया तन्मय हो गए।

विशेष—(१) अद्भुत रस इसलिए कहा गया है कि यह श्रृंगार लौकिक न होकर पारलौकिक प्रकार का है और शिलाखण्डों की द्रवणशीलता साथ ही जल का जम जाना दोनों ही अद्भुत हैं।

(२) विरोधाभास, काकुवक्रोक्ति और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार हैं।

पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सिगरौ।
पाछैं रवि रथ थक्यौ चलै नहिं आगे डगरौ ॥२३॥
थकित शरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
बिहरत सजनी स्याम जथा रुचि अति रति बाढ़ी ॥२४॥

शब्दार्थ— उडुमंडल=तारामंडल। सिगरौ=समस्त। न जनी=पता नहीं। केतिक=कितनी। जथारुचि=यथारुचि=इच्छानुसार।

प्रसंग—राधाकृष्ण यथेच्छरूप से उस निरन्तर बढ़ती हुई शरद-यामिनी में रति-विलास करते रहे।

व्याख्या—पवन चन्द्रमा और समस्त तारामंडल थक गया था। इन्हीं के पीछे अर्थात् इन्हींके थकन के कारण मार्ग न मिलने से सूर्य भी थका हुआ सा खड़ा हो गया और मार्ग नहीं चलता। थकी हुई शरद ऋतु की रात्रि न जाने कितनी बढ़ती रही कि उसमें अत्यन्त प्रगाढ़ और निरन्तर गहराते हुए प्रेम के साथ राधा और कृष्ण अपनी रुचि के अनुसार रति-विलास का आनन्द लेते रहे।

विशेष—गणना और सार के अतिरिक्त अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इहि विधि बिविध बिलास बिलसि निसि कुंज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न व्रीड़न वृंद मदन के ॥२५॥
उरसि मरगजी माल चाल मद गज जिमि मलकत।
घूमत रस भरे नैन गंडस्थल श्रमकन झलकत ॥२६॥

शब्दार्थ—क्रीडन=खेलने के लिए। व्रीड़न=लज्जित करना। मरगजी माल=दलित माला। मलकत=लज्जित करना। गंडस्थल=कपोल तट। स्रमकन=पसीने की बूंदें, स्वेद विन्दु।

प्रसंग—इस प्रकार कुंजों में विविध विलास करने के वाद करोड़ों मदनों को दलित करनेवाले श्रीकृष्ण यमुना जल में विहारार्थ जाने लगे। उसी समय की शोभा का वर्णन कवि यहाँ प्रस्तुत करता है।

व्याख्या—इस प्रकार इस शरद यामिनी में कुंजों में अनेक प्रकार से विलास करने के बाद अनेकों मदनों (कामदेवों) को लज्जित करनेवाले श्री कृष्णजी गोपियों के साथ यमुना की ओर जल-विहार करने के लिए चल पड़े। उस समय उनके वक्षस्थल पर दलित पुष्पमाला थी, उनकी गति मत्त गजराजों को भी पराजित कर रही थी। उनके प्रेम-रस से परिपूर्ण नेत्र चंचल हो रहे थे और उनके कपोल तट पर रति-श्रम के कारण स्वेद-विन्दु झलक रहे थे।

विशेष—(१) तुलनात्मक देखिए—'व्रीड़न कोटि मदन के' के लिए—

कोटि मनोज लजावन हारे।

(२) 'उरसि मरगजी माल' तथा 'गंडस्थल स्रमकन झलकत' पद रति के द्योतक हैं।

(३) कोई व्यक्ति यह आपत्ति सहज ही उठा सकता है कि क्या कृष्ण को रात-श्रम के कारण शैथिल्य नहीं हुआ। सचमुच ही नहीं हुआ। यदि ऐसा हो जाता तो फिर उनके देवत्व के प्रति आक्षेप की गुँजाइश रह जाती। कृष्ण तो विश्व-रमण हैं। मदन भी कृष्ण की रमण-विधियों को देखकर लज्जित है।

(४) उपमा और व्यतिरेक अलंकार हैं।

धाय जमुन जल धँसे लसे छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु गजराज संग लिये तरुनी करनी ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtioh by eGangotri

तियनि के तन जल-मागन बदन तहुँ यों छबि छाये।
फूली हैं जनु जमुन कनक के कमल सुहाये ॥२८॥

शब्दार्थ—धाय=दौड़कर। करनी=हथिनी। शेष सरल हैं।

प्रसंग—दौड़कर यमुना के जल में राधा और कृष्ण प्रविष्ट हो गए, उसी समय की शोभा का वर्णन कवि करता है।

व्याख्या—दौड़कर ये यमुना के जल में प्रविष्ट हो गए, उस समय की उनकी लसनेवाली छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे राधाजी को अपने साथ लेकर विहार करते समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कोई उन्मत्त हाथी अपने साथ तरुणी हस्तिनी को लेकर जल-विहार कर रहा हो। जल में गोपियों के तन और मुख दोनों प्रतिबिंबित होकर ऐसे लस रहे थे मानो यमुना के निर्मल जल में कंचन के कमल खिल रहे हों।

विशेष—(१) यहाँ प्रथम भाव नन्ददासजी ने भागवत से लिया है। राधा और कृष्ण को करी-करनी (हाथी और हस्तिनी) कहकर मदमत्तता सूचित की गई है।

(२) उत्प्रेक्षाएं अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं।

मंजुल अंजुलि भरि-भरि पिय कौं तिय जल मेलत।
जनु अलि सों अरविंद-बृन्द मकरंदनि खेलत ॥२९॥
यह अद्‌भुत रस-रासि कहत कछु नहिं कहि आवै।
सुक सनकादिक नारद सारद अतिशय भावै ॥३०॥

शब्दार्थ—मेलत=फेंकती हैं। अरविंद वृन्द=कमलों का समूह। मकरन्दनि=सिक्त पराग से। अतिसय=अतिशय, अत्यन्त, बहुत। भावै=अच्छी लगती है।

प्रसंग—यमुना में गोपियाँ कृष्ण के ऊपर अपने हाथों से जल की छींटें डालती हुई कैसी लगती हैं, कवि वर्णन करता है—

व्याख्या—गोपियाँ अपनी पवित्र अँजुलियों में जल भर-भरकर प्रियतम श्रीकृष्ण के ऊपर फेंकती हैं। ऐसा लगता है मानो कमलों का समूह मकरंद से किसी एक भौंरे के साथ खेल रहा हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस अद्भुत रस-राशि का वर्णन करते ही नहीं बनता यह तो शुकदेव सनकादि मुनियों के साथ ही साथ नारद मुनि और स्वयं सरस्वती को भी अत्यन्त अच्छी लगती है।

विशेष—'भरि-भरि' में वीरसालंकार है।

सिव मन ही मन ध्यावैं काहू नाहिं जनावैं।
सेस सहसमुख गावैं अजहूँ अंत न पावैं॥३१॥
अज अजहूँ रज वांछित सुंदर वृन्दावन को।
सो न तनक कहुँ पावत सूल मिटत नहिं तन को॥३२॥

शब्दार्थ—काहू=किसी को भी। अजहूँ=आज तक भी। अज=ब्रह्मा।

प्रसंग—श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन कवि करते हुए कहता है—

व्याख्या—शिवजी इसी रस की सृष्टि करनेवाले श्रीकृष्ण को मन ही मन ध्यान करते रहते हैं किसी पर भी उसे प्रकट नहीं करते। शेषजी हजारों मुखों से इसीका गुण गान करते रहते हैं फिर भी इनके गुणों का अंत नहीं होता। इसी सुन्दर वृन्दावन की (जिस पर कृष्ण के चरण पड़े हैं) रज को आज भी ब्रह्माजी चाहते हैं किन्तु उन्हें लेशमात्र भी कहीं उपलब्ध नहीं होती कि उनके तन की तपन मिट जाती।

विशेष—(१) शायद इसी वृन्दावन जैसी पवित्र स्थलों के कारण किसी कवि ने देवताओं को भी इस भारत-भूमि पर जन्म लेने के लिए लालायित दिखाया है—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि
धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते
भवन्ति भूमः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(२) कृष्ण की लीलाएँ ही अद्भुत होती हैं तो फिर क्यों न अन्य देव-गणों के द्वारा उनका ध्यान किया जाय—

"लीलादुर्ललिताद्भुद् व्यसनिने देवाय तस्मै नमः।"

(३) विशेषोक्ति अलंकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जदपि पद-कमल कमला श्रमला सेवत निसिदिन ।
यह रस श्रपनैं सपनैं कवहूँ नहि पायौ तिन ॥३३॥
बिनु श्रधिकारी भए नहिंन वृन्दावन सूझै ॥
रेनु कहाँ तें सूझै जब लौं वस्तु न बूझै ॥३४॥

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—कमला भी इस पद-रज को रात दिन सेवन करने के बावजूद भी प्राप्त नहीं कर पाती है ।

व्याख्या—यद्यपि लक्ष्मी श्रीकृष्ण के इन्हीं पद-कमलों की रात दिन सेवा करती रहती हैं, फिर भी उन्होंने इस रस को श्रपने सपने में भी प्राप्त नहीं किया । सही बात तो यही है या इसका कारण यह है कि वृन्दावन तब तक किसीको नहीं सूझता (दिखाई देता) जब तक कि वह उसका श्रधिकारी नहीं बन जाता । श्रौर जब तक कोई वस्तु दिखाई नहीं देगी तब तक उसकी धूल कैसे दिखाई दे सकती है । तात्पर्य, जब तक वृन्दावन दिखाई देगा तब तक उसकी धूल दिखाई देना नितान्त श्रसम्भव है ।

विशेष—(१) यहाँ वृन्दावन का महत्व प्रतिपादित किया गया है । उसकी रज का इतना प्रबल प्रताप श्रौर श्रेष्ठतम महत्त्व है कि स्वयं लक्ष्मी जो विष्णु के पद-कमलों की सेविका हैं इसे प्राप्त करने के लिए लालायित रहती हैं फिर भी वे श्रभी तक इसे प्राप्त करने की श्रधिकारिणी नहीं बन सकी हैं । यहीं श्रप्रत्यक्ष रूप से गोपियों की भी महत्ता प्रतिपादित कर दी गई है श्रौर साथ ही प्रेम की भी । बिना प्रेम के कोई भी वृन्दावन की रज प्राप्त करने का श्रधिकारी नहीं बन सकता । गोपियाँ इसी प्रेम के कारण उसकी श्रधिकारिणी हैं ।

(२) विनोक्ति, काकुवक्रोक्ति श्रौर रूपक श्रलकारों के साथ ही साथ प्रमुख श्रलंकार विशेपोक्ति है । काव्यलिंग भी व्यंजित है ।

निपट निकट घट में ज्यों श्रंतरजामी श्राही ।
विषय विदूषित इंद्री पकरि सकै नहिं ताही ॥६५॥
जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै ।
ेम-भगति सो पावै श्ररु सब कै मन भावै ॥३६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—घट=हृदय। शेष सरल हैं।

प्रसंग—रासलीला का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं—

व्याख्या—जिस प्रकार मनुष्य के हृदय के अन्तर्यामी बहुत ही निकट हैं फिर भी विषयों के कारण विदूषित हुईं इन्द्रियाँ उसकी अनुभूति नहीं कर पातीं। उन्हीं लोगों को मैं यह अत्यन्त सरल मार्ग बता रहा हूँ कि जो इस लीला को गाता है, ध्यानपूर्वक सुनता है और रुचिपूर्वक दूसरे लोगों को सुनाता है वही व्यक्ति प्रेम-भक्ति को प्राप्त होता है और दूसरे लोगों के मन को भाता है।

विशेष—(१) अन्तर्यामी होकर भी भगवान् हृदय के निकट हैं, हृदय में नहीं; क्योंकि वह चैतन्य आत्म तत्व है अत: आत्मा में ही रहता है। इसी बात को अनेक दार्शनिकों और भक्तों ने अपने-अपने ढंग से कहा हैं। कबीर लिखते हैं—

कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूँढ़ें बन माँहि।
तैसेई घट-घट राम है दुनिया देखै नाँहि॥

× × ×

ज्यौं तिल माँहीं तेल है ज्यौं चकमक में आगि।
तेरा साईं तुझमें जागि सकै तौ जागि॥

इन्द्रियाँ विषय-विकार जन्य जब तक हैं तब तक तो नहीं ही देख सकतीं, हाँ उससे विमुक्त होकर उसे देख सकती हैं।

(२) उदाहरण, काव्यलिंग और अनुप्रास अलकार हैं।

हीन असर्धा निंदक नास्तिक धरम-बहिर्मुख।
तिन सों कबहुँ न कहै, कहै तौ नाँहिन लहै सुख॥३७॥
भगंत जनन सों कहु जिनके भागवत धरम बल।
ज्यों जमुना के मीन लीन नित रहत जमुन जल॥३८॥

शब्दार्थ—असर्धा=अश्रद्धालु। नास्तिक=ईश्वर को न माननेवाले। शेष सरल हैं।

प्रसंग—इस रासलीला को सुनने के पात्रों के विषय में कवि बताता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कौन इसके पात्र हैं और कौन नहीं हैं।

व्याख्या—किसीकोभी यह कथा उन लोगों से नहीं कहनी चाहिए जो हीन हैं, अश्रद्धालु हैं, इसके निंदक हैं, नास्तिक हैं या धर्म से वहिर्मुख हैं अर्थात् धर्मानुकूल आचरण से रहित हैं। यदि कह भी देगा तो इससे उपलब्ध होने-वाला सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। जिन्होंने भागवत के धर्म पर बल दिया है उन्हीं भक्त जनों से इस कथा को कहो। वे इस कथा में वैसे ही लीन रहते हैं जैसे यमुना के जल में नित्यप्रति मछलियाँ लीन रहती हैं।

विशेष—(१) किसी भी बात को, उन लोगों को ही सुनाना चाहिए जो उसके पात्र हों। कहने का तात्पर्य यह है कि जो इसपर विश्वास कर सकें। यहाँ कतिपय वे ही लोग अपात्र या कुपात्र गिनाए गए हैं जिनके मन में भागवत के इस प्रसंग के प्रति कोई रुचि या विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ।

(२) तुलना देखिए—

प्रेम कथा तासौं कहौं, जो प्रेमी जन होइ।
न तरु अंधसनमुख कवौं बीन बजावहुं रोइ॥

(३) काव्यलिंग और उदाहरण अलंकार है।

जदपि सप्त-निधि भेदक जमुना निगम बखानैं।
ते तिहि धारहि धार रमत न छुअत जल आनैं॥३९॥
यह उज्जल रस-माल कोटि जतनन कै पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ यहि तोरौ जिनि कोई॥४०॥

शब्दार्थ—सप्तनिधि=सप्तसिंधु। शेष सरल है।

प्रसंग—यमुना का महात्म्य वर्णन कविवर नन्ददासजी अब प्रस्तुत करते हैं।

व्याख्या—वेदों का यह कहना है कि यमुना सप्तसिन्धुभेदिनी है। वे वैष्णव जल उसीकी धारा में रमते हैं, आनन्द लाभ करते हैं किसी अन्य की जल-बूंदों का स्पर्श भी नहीं करते।

यह उज्जवल रस-माला करोड़ों यत्नों से पिरोई गई है। इसीलिए इसे सावधानी से पहनने की आवश्यकता है। किसीको भी इसे तोड़ना नहीं चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—(१) यमुना कृष्ण को अत्यन्त प्रिग रही है और है इसीलिए यमुना-जल को ही उनके भक्त पूजते हैं : उसी में कृष्ण-भक्ति देने की शक्ति स्वीकारी गई है ।

(२) निधि शब्द का प्रयोग कतिपय अन्य कवियों ने भी सागर के अर्थ में किया है—

"निधिनीर सुधा के समान करो"

—घनानंद

(३) काव्यलिंग अलंकार है ।

श्रवन-कीर्तन सार सार सुमिरन को है पुनि ।
ज्ञान-सार हरि-ध्यान-सार स्रुतिसार गहत मुनि ॥४१॥
अघ हरनी मन-हरनी सुन्दर प्रेम बितरनी ।
'नंददास' के कण्ठ बसौ नित मंगल-करनी ॥४२॥

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—नन्ददास जी अब इस रासलीला रूपी माला की कतिपय अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए अपनी अभिलाषा प्रकट करते हैं कि यह उनके हृदय में बसी रहे ।

व्याख्या—इस लीला रूपी माला में सात वस्तुओं के सार तत्व गुंफित किए गए हैं अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, ध्यान, ज्ञान और श्रुति के साथ-साथ हरि-प्रेम-भक्ति के सार इसमें गुंफित किए गए हैं ।

यह लीला मन को हरण करनेवाली, पाप-विनाशिनी एवं प्रेम को फैलाने वाली है (इसीलिए नन्ददासजी अभिलाषा करते हैं कि यह लीला) जो मंगल करने वाली है नित्यप्रति मेरे कण्ठ में बसे ।

विशेष—(१) रासलीला में भक्ति, ज्ञान और योग के सार तत्वों के साथ ही साथ वेद-ज्ञान का भी सार तत्व निहित है । वेद में ज्ञान उपासना और कर्म तीनों का समावेश है । इसमें अध्यात्म ज्ञान, भक्ति-प्रेम और कर्म तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है । इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि रास-लीला में वस्तुतः उक्त सिद्धान्तों की समष्टि है ।

(२) काव्यारंभ में जैसे मंगलाचरण रहता है वैसे ही अन्त में शुभ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामना के रूप में कतिपय छन्द या पंक्तियों का होना आवश्यक माना गया है। यहाँ नन्ददासजी ने इसका पालन किया है। लीला को पाप-नाशिनी और मंगल-करणी बताया है। साथ ही यह सुन्दर प्रेम को भी करनेवाली हैं। भगवान की लीला होती ही मंगल करनी है। तुलसीदास,जी लिखते हैं—

"मंगल-करनि, कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की"

(३) अनुप्रास अलंकार है।

परिशिष्ट

अति सुदेस कटि देस सिंह सोभित जंघन अस।
जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम-सुधा-रस ॥१॥
सुन्दर पद अरबिंद-मधुर मकरंद मुक्त जहँ।
मुनिजन-मधुकर निकर सदा सेवत लोभी तहँ ॥२॥

शब्दार्थ—सुदेश=सुन्दर। आकरसत=आकर्षित करता है। मुक्त=झरता है।

प्रसंग—राधा के सौन्दर्य का वर्णन।

व्याख्या—उनका कटि प्रदेश अत्यन्त सुन्दर था, ऐसा लगता था मानो जंघाओं के ऊपर सिंह विराजमान हो। वे पूर्ण युवती थीं और उनका यौवन-मद कृष्ण को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था उनके यौवन से प्रेमामृत रस की वृष्टि होती थी।

उनके सुन्दर पाँव रूपी कमलों से मधुर मकरन्द स्रवित होता था। इसीलिए मुनिजन भ्रमरों की भाँति उसी मकरंद के लोभी बनकर उनकी सेवा करते हैं।

विशेष—उत्प्रेक्षा, उपमा और काव्यलिंग अलकार हैं।

जे संसार-अंधार-अगर मैं मगन भए बर।
तिन हित अद्भुत दीप प्रगट कीनों जू कृपा कर ॥३॥
श्री भागवत सुनाम परम-अभिराम परम मति।
निगम सार सुकुमार बिना गुरु कृपा अगम गति ॥४॥

शब्दार्थ—मगन भए=डूब गए। तिनहित=उनके लिए। अगमगति=अगम्य गतिवाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—भागवत की महिमा का प्रतिपादन करते हुए नन्ददासजी लिखते हैं—

व्याख्या—जो लोग संसार में मायारूपी अपार अंधकार में डूबे हुए हैं उनके लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने यह भागवतरूपी परम ज्योति से सम्पन्न दीपक प्रकट किया है। यह भागवत परम मति को और परम गति को प्रदान करनेवाली अत्यन्त सुन्दर नामवाली एक कृति है जिसमें समस्त आगम-निगमों का सार निहित है और जो बिना गुरु की कृपा के अगम गतिवाली है तात्पर्य इसे गुरू की सहायता से ही समझा जा सकता है।

अब सुन्दर श्री . . . मुन गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धिदायिक नायक पै सब सिधि पाऊँ ॥५॥
तिहि सौरभ सों मत्त मुदित अलि धाए आवत।
सुक सारिका रतनमय श्री गोविन्द-गुन गावत ॥६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—अब कवि वृन्दावन का वर्णन प्रस्तुत करता है

व्याख्या—अब मैं सुन्दर वृन्दावन के गुणों को गाकर सुनाता हूँ। यह वृन्दावन समस्त सिद्धियों को प्रदान करनेवाला है। उसके वृक्षों के पुष्पों की गंध से मत्त होकर चारों ओर से भ्रमर गण दौड़े चले आते हैं। तोता और मैना दोनों ही गोविन्द के गुण गान करते हैं।

थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावैं।
उड़ि उड़ि परत पराग कछू छबि कहति न आवै ॥७॥
जमुना जू अति प्रेम भरी नित बहै सुगहरी।
मनि-मंडित महि माहि दौरि जनु परसति लहरी ॥८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

प्रसंग—वृन्दावन के साथ ही कवि यमुना का भी वर्णन करता है—

व्याख्या—स्थल और जल दोनों में खिले फूल झलमलाते रहते हैं और उनके ऊपर अनेक भौंरे उड़ते रहते हैं—मँडराते रहते हैं। उनका पराग उड़-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उड़ कर इधर-उधर पृथ्वी पर बिखर जाता है जिसकी शोभा तो कुछ कहते ही नहीं बनती ।

वहीं अत्यन्त गहरी और प्रेम रस से परिपूर्ण यमुना जी भी बहती रहती हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो उसकी लहरें मणिमय पृथ्वी के स्पर्श के लिए दौड़ रही हों ।

विशेष—पुनरुक्ति प्रकाश, उत्प्रेक्षा अलंकार ।

कण्ठ मोति की माल ललित बनमाल धरे पिय ।
मंद मधुर हरि पीत बसन फरकत करषत हिय ॥९॥
मोहन मुरली नाद कियो सु सुन्यो सब किनहीं ।
जथा सुखद सुख रूप तथा विधि परस्यो तिनहीं ॥१०॥

शब्दार्थ—सरल हैं ।

प्रसंग—श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करने के उपरान्त कवि मोहन की मुरली की प्रशंसा करता है—

व्याख्या—श्रीकृष्ण के गले में मोतियों की माला और वक्षस्थल पर वन-पुष्पों की माला सुशोभित हो रही थी । उनके स्कंध पर पड़ा हुआ पीताम्बर मंद-मंद और मधुर गति से फरफरा रहा है जो हृदय को आकर्षित करता है ।

श्रीकृष्ण ने मुरली का स्वर किया । वही सभी गोपियों ने सुना । उन्होंने इस नाम में भी ऐसा ही आनन्द प्राप्त किया जैसा कि सुखद प्रियतम का स्पर्श होता है ।

तरनि-किरन ज्यों मनि पषान सबहीं सों परसै ।
सूर्यकांत मनि बिना नहिन कहुँ पावक दरसै ॥११॥
कोउक तरुनि गुनमय सरीर तन सहित चली डकि ।
मातु-पिता-पति-बन्धु रहे झुकि न रहीं रुकि ॥१२॥

शब्दार्थ—तरन-किरन=सूर्य की किरणें । पषान=पाषाण, पत्थर । सबहींसौं=सभी को । परसैं=छूती हैं, स्पर्श करती है । सूर्यकांतमनि=एक मणि विशेष । पावक=अग्नि । दरसै=दिखाई देती है । डकि=झगड़ कर या तेजी से या निश्चित होकर ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसंग—स्पष्ट है।

व्याख्या—सूर्य की किरणें जिस प्रकार मणि और पत्थर सभी का स्पर्श करती हैं किन्तु फिर भी सूर्यकांतमणि के अतिरिक्त किसी अन्य में अग्नि दिखाई नहीं देती है।

कोई-कोई गोपी अपने गुणमय शरीर से ही निश्चिन्त होकर (कृष्ण से मिलने के लिए) चल दी। उसके माता-पिता-पति या अन्य बन्धु-बान्धव ही उसके प्रेम और हठ या दृढ़ निश्चय के समक्ष झुके, परन्तु वह नहीं रुक सकी।

चलत अधिक छबि फबी स्रवन में कुण्डल झलकैं।
संकित लोचन चंपल ललित छबि बिलुलित अलकैं ॥१३॥
कहुँ दिखियत कै नाहि सखी बन बीच बनी यौं।
बिजुरिन की सी छटा सघन बन माँझ चली ज्यौं ॥१४॥

शब्दार्थ—स्रवनमें=कान में। कुण्डल=कर्णाभरण या कर्णफूल। बिलुलित अलिकैं=लहराती हुई केशराशि।

व्याख्या—चलते समय उसकी छवि और भी अधिक बढ़ गई। उसके कानों में कुण्डल झलक रहे थे। उसके सशंक नेत्र चपल होकर सुन्दर ढंग से इधर-उधर देख रहे थे और उसकी सुन्दर केशराशि लहलता रही थी।

आइ उमगि सो मिलीं रंगीली गोप-बधू अस।
नन्द-सुअन. सागर सुन्दर सों प्रेम-नदी जस ॥१५॥
कृष्ण तुष्टिकर कर्म करैं जो आन प्रकारा।
फल बिभचारि न होत होय सख परम अपारा ॥१६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—वे समस्त रंगीली गोप-वधुएँ कृष्ण से इस प्रकार आकर मिलीं मानो नंद-पुत्र रूपी सुन्दर सागर से प्रेम नदी आकर मिली हो। (रूपक और उदाहरण अलंकार)

कृष्ण को सन्तुष्ट करने के लिए जो कोई व्यक्ति अन्य प्रकार के यत्न करता है वे भी असत्य या व्यर्थ सिद्ध नहीं होते उनके भी परम सुखों को प्रदान करनेवाले फल उपलब्ध होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुंजन प्रति निकसत सोभित सुन्दर आनन अस।
तमकि कुटी तें निकसत नव राका मयंक जस ॥१७॥
कैंक बचन कहे नर्म कैंक रसवंर-कर्मनि पर।
एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुन्दर-वर ॥१८॥

शब्दार्थ—मयंक = चन्द्रमा। कैंक = किसी ने।

व्याख्या—कुंजों से निकलते हुए सुन्दर मुख ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी कुटी से तंमक कर (झटपट) निकला हो (उदाहरण)

किसी-किसीने नरम (विनयशील) वचन कहे, किसी-किसीने रसिक कर्मों पर और एक ने स्त्री धर्म के ऊपर अत्यन्त मर्मभेदी सुन्दर और श्रेष्ठ वचन कहे।

(सुन्दरबर में पुनरुक्तवदाभास)

ये सब नवल किसोरी भोरी भरीं नेह रस।
तातें समुझि न परी करी पिय प्रेम बिवस अस ॥१९॥
अरु तुम्हरे कर-कमल महा दूती यह मुरली।
राखे सबके धरम प्रेम अधरन-रस जुरली ॥२०॥

शब्दार्थ—नवल = नवीन। किसोरी = किशोर अवस्थावाली।

व्याख्या—ये समस्त (गोपियाँ) नवीन किशोरावस्थावाली हैं साथ ही अत्यन्त भोली-भाली और प्रेम-रस से परिपूर्ण हृदयवाली हैं। इसीसे इनको कुछ समझ नहीं पड़ता तुम्हारे प्रेम ने ऐसा ही विवश कर दिया है।

और तुम्हारे कर-कमलों में यह महा दूती मुरली है जिसने तुम्हारे अधरों के रस का पान करके सभी का धर्म स्वयं ही रख छोड़ा है। तात्पर्य यह है कि जो अधर-रस इन गोपियों को पीने के धर्म में था उसीको यह मुरली अकेली ही पीती रहती है।

सुन्दर पिय को बदन निरखि को सो जु न भूल्यो।
रूप सरोवर माँहि सरद अंबुज जनु फूल्यो ॥२१॥
कुटिल अलक मनु मनबोले मधुकर मनवारे।
तिन मैं मिलि गए चपल नयन पिय मीन हमारे ॥२२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—वदन=मुख। निरखि=देखकर। भूल्यौ=आत्मविस्मृत हुआ। अंबुज=कमल।

व्याख्या—प्रियतम के सुन्दर मुख को देखकर ऐसा कौन है जो आत्म विस्मृत नहीं हुआ अर्थात् सभी लोग आत्मविस्मृत हो जाते हैं। वह मुख ऐसा लगता है मानो सौन्दर्य रूपी सरोवर में शरद ऋतु का कमल विकसित हो रहा हो।

(उत्प्रेक्षा और काकुवक्रोक्ति)

घुँघराली केशराशि ऐसी लगती है मानो गुंजन करते हुए (मौन) मत्त भ्रमर हों। और हे प्रियतम! उन्हीं में हमारी चंचल नेत्ररूपी मछलियाँ मिल गई हैं। (रूपक और उत्प्रेक्षा)

चितवनि मोहन मन्त्र भौंह जनु मनमथ-हाँसी।
निपट ठगौरी आदि मंद मृदु मादक हाँसी ॥२३॥
अधर सुधा के लोभ भई हम दासि तिहारी।
ज्यों लुवधीं पद-कमलनि कमला चंचल नारी ॥२४॥

शब्दार्थ—निपट=नितान्त। लुब्धीं=लोभित हुईं।

व्याख्या—हे मोहन! तुम्हारी दृष्टि तो मोहिनी मंत्र ही है और भौंहें मानो कामदेव की हंसी हो। आपकी मंद-मंद मृदुल मादक हँसी तो नितान्त ठगने के लिए है। (उत्प्रेक्षा)

हम तुम्हारी दासियाँ इसलिए हुई थीं कि हमें तुम्हारा अधरामृत रसपान करने के लिए मिलता रहेगा। जैसे कमला जैसी चंचल नारी भी तुम्हारे पद-पद्मों पर लोभित हो गई।

(उदाहरण)

जौ न देहु यह अधर-अमृत सुनि हो मोहन हरि।
करिहैं यह तन भसम विरह-पावक मों गिरि परि ॥२५॥
तब पिय पदवी पाइ बहुरि धरिहैं सुंदर अंग।
निधरक ह्वै इह अधर-अमृत पैहैं फिरिहैं संग ॥२६॥

शब्दार्थ—जौ=यदि। मों=में। निधरक ह्वै=निःशंक होकर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

 CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—हे मोहन हरि ! तुम खूब कान खोलकर सुन लो कि यदि तुमने अपने अधरामृत रस का पान हमें नहीं कराया तो हम इस शरीर को वियोगाग्नि में गिरकर भस्म कर देंगी।

तब प्रियतम की पदवी को प्राप्त कर पुनः सुन्दर अंग धारण करेंगी फिर निःशंक होकर हम तुम्हारे अधरामृत रस का पान कर सकेंगी और तुम्हारे साथ घूमेंगी भी।

अद्भुत साँवल अंग बन्यौ अद्भुत पीताम्बर।
मूरति धरि सिंगार प्रेम-अंबर ओढ़े हरि ॥२७॥
बिलुलित उर बनमाल लाल जब चलत चाल वर।
कोटि मदन की भीर उठत इत लुठित पगन तर ॥२८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—श्रीकृष्ण के अद्भुत श्यामल गात पर उनका पीताम्बर अद्भुत छविमान हो रहा है। ऐसा लगता है मानो शृंगार का रूप धारण कर श्रीकृष्ण ने प्रेम का वस्त्र ओढ़ रखा हो। (उत्प्रेक्षा)

जब श्रीकृष्ण लाल सुन्दर चाल से चलते हैं तो उनके वक्षस्थल पर माला हिलती है। उनकी इस छवि पर करोड़ों कामदेवों की भीड़ की भीड़ उनकी पग-रज में लेटती है। (प्रतीप)

व्रज-जुवतिन-कर मंडित मंडन करत फिरत बन।
अपनी दुति के उड़गन गड़पति मनु खेलत घन ॥२९॥
फूलनि-माल बनावन लाल पहिरि पहिरावनि।
सुभग सरोज सुधावन जोत मनोज मनावन ॥३०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—श्रीकृष्ण व्रज-बालाओं के हाथों में हाथ डाले सुशोभित हो रहे हैं और इसी मुद्रा में वन में घूमते फिर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो चन्द्रमा के साथ-साथ उसीकी द्युतिवाले तारागणों के साथ मानो कोई मेघ खेल रहा हो (उत्प्रेक्षा)

पुष्पों से माला बनाना, स्वयं पहनना और गोपियों को पहनाना, कभी उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन्दर कमल-बदनियों के पीछे दौड़ना और कभी मनाना यही खेल चल रहे हैं।

राजबेल अरु एल गेल मृदमद की बेल इत।
नव कुर्वक केवरा केतकी गंध-बंधु नित ॥३१॥
बैठे तहँ सुन्दर सुजान सब गुननिधान हरि।
बिलसत बिविध बिलास रास अति हुलास भरि ॥३२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—इधर राजबेल, इलायची, कस्तूरी इत्यादि की लताएँ छाई हुई हैं। नवीन कुर्वक, केवड़ा और केतकी नित्य प्रति गंध प्रदान करते रहते हैं।

वहाँ समस्त गुणों के आधार चतुर श्रीकृष्ण बैठ गए और फिर अत्यन्त उल्लास में भरकर अनेक प्रकार से रास-क्रीड़ाओं में विलास कर रहे हैं।

अहो सुभग बन सुगंध पवन नैंसुक थिर ह्वै रहि।
सुख के भवन दुख-दवन रवन कहुँ इत उत है लहि ॥३३॥
अहो चंपक अहो कुसुम तुम्हैं छवि सब सों न्यारी।
नेकु बताय जु देव जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥३४॥

शब्दार्थ—नैंसुक=थोड़ी-सी देर के लिए। रवन=तुझे। शेष सरल हैं।

व्याख्या—अरी सुन्दर वन की सुगन्ध तू थोड़ी-सी देर के लिए शान्त होजा और हमें यह बता कि वे सुख के संदन, दुखों को दलित करने वाले हरि कहीं इधर-उधर मिले थे या नहीं ?

अहो चंपे के फूल-तुम्हारे ऊपर सबसे न्यारी छवि छाई हुई है (लगता है तुम्हें उनके दर्शन हुए हैं) तुम्हीं हमें तनिक संकेतों में ही बता दो कि श्रीकृष्ण मुरारी कहाँ हैं।

अहो असोक हरि सोक लोकमनि पियहिं बतावहु।
अहो पनस सुभ सनस तीय सब मरत जियावहु ॥३५॥
हे जमुना सब जानि-बूझि तुम हठहिं गहत हो।
जो जल जग उद्धरन ताहि तुम प्रगट बहत हो ॥३६॥

शब्दार्थ—हरिसोक=शोक का निवारण कर। तीय=तिय=स्त्रियाँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जियावहु=जीवित करो। हठहिं गहत हौ=हठ को ग्रहण किए हुए हो।

व्याख्या—अहो अशोक! तुम्हीं लोकमणि प्रियतम श्रीकृष्ण की कुछ बात बताकर (कि वे किधर गए हैं, कहाँ हैं) हमारे शोक का निवारण करो। अरे पनस और शुभ सनस! तुम्हीं बताओ कि हमारे प्रियतम कहाँ गए हैं, ये समस्त स्त्रियाँ मरी जा रही हैं तुम्हीं इन्हें जीवित रखो।

अरी यमुने! तुम सब कुछ जान-बूझकर भी हठ साधे हुए हो जो तुम्हारा जल संसार का उद्धार करने के लिए है उसी को तुम स्पष्ट और प्रगट बहाती रहती हो।

अहो कमल सुभ बरन-वरन कहु कहुँ हरि निरखे।
कमल माल बनमाल कमल कर अति ही हरखे ॥३७॥
हरि की चलनि बोलि हरि की सी हरि की हेरनि।
हरि की सी गाइ निवेरनि टेरनि अंबर फेरनि ॥३८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—अरे अनेक प्रकार के शुभ वर्णोंवाले कमल के पुष्पो! तुमने अवश्यमेव कहीं न कहीं हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण को देखा है इसीलिए तुम्हारे यह कमलों की पंक्ति वनमाला इत्यादि अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

हरि की सी चाल, हरि की सी बोली, हरि की सी देखने की स्थिति अर्थात् हरि की सी ही दृष्टि, हरि की भाँति ही गायों को निवेरना (घेरकर एकत्र इकट्ठा करना) उनको बुलाना और वस्त्र बदलना सभी कुछ श्रीकृष्ण का सा ही था।

हरि की सी बनि बन तें आवनि गावन रस रंगी।
हरि की सी गेंदुक रचन-रचन पुनि होन त्रिभंगी ॥३९॥
कोउ इक अंबर को गिरिवर कर धर बोलत तब।
निहडर इहि तर रहौ गोप गोपी गाइन सब ॥४०॥

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—ठीक श्रीकृष्ण का सा बनाव-शृंगार धारण करके वन से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोटना और रस-राग गायन करना और श्रीकृष्ण की ही भाँति गेंदें बनाना और त्रिभंगी मुद्रा बनाकर नृत्य करना ।

कोई-कोई एक वस्त्र को पर्वत की भाँति हाथ पर धारण कर करने लगती थी कि गोप-गोपी सभी निर्भय होकर इसके नीचे समस्त गायों को लेकर रहो ।

चकित भईं सब कहति कौन यह बड़ भागिनि अस ।
परम कंत एकांत पाय पीवत जु अधर रस ॥४१॥
सोऊ पुनि अभिमान भरी जब कहन लगी तिय ।
मों तें चलो न जाय जहाँ तुम चलन चहत पिय ॥४२॥

शब्दार्थ—बड़ भागिनि=सौभाग्यशालिनी । अस=इतनी । सोऊ= वह भी ।

व्याख्या—(उस श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न के पास पड़े हुए दूसरे पद-चिह्न को देखकर) सब-की-सब गोपियाँ आश्चर्य में पड़ गईं और कहने लगीं कि यह कौन इतनी सौभाग्यशालिनी है जो नितांत एकांत प्राप्त कर परम कंत प्रियतम श्रीकृष्ण के अधरामृत रस का पान करती है ।

फिर (कुछ दूर आगे चलकर) उसने भी अभिमान में भरकर जब यह कहा कि हे प्रियतम ! तुम जहाँ चलना चाह रहे हो वहाँ मुझपर चला ही नहीं जा रहा है ।

तन की जोति जगमगै छूटि रही छाजत है धर ।
मानहुँ ठाढ़ी ससि बिनु रोहिनि ससि मंडल पर ॥४३॥
वा सुंदरि की दसा देखि कहत न बनि आवै ।
बिरह भरी पुतरी जु होइ तौ कछु छबि पावै ॥४४॥

शब्दार्थ—धर=पृथ्वी पर । शेष सरल हैं ।

व्याख्या—(राधा के) शरीर की जगमगाती हुई ज्योति उसके शरीर से छूटकर पृथ्वी पर पड़ रही है । ऐसा लगता है मानो शशि-मण्डल पर चन्द्रमा के बिना चाँदनी खड़ी हो । (विनोक्ति और उत्प्रेक्षा)

उस सुन्दरी की विरह में जो मलीन दशा हो गई थी उसे देखकर कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते नहीं बन पड़ता। यदि उसकी पुतलियाँ वियोग से भरी होतीं तो छवि प्राप्त कर सकती थीं।

कोउ चुंबति मुख-कमल कोऊ भुग्न भाल सु अलकें।
जा मँह पिय संगम की मंजुल श्रमकन झलकें ॥४५॥
पोछति अपने अंचल रुचिर दृगंचल ती के।
पीक भरे जु कपोल लील रद छद जहँ पी के ॥४६॥

शब्दार्थ—श्रमकन = स्वेद-बिन्दु; पसीने की बूँदें। ती के = त्रिया के, स्त्री के, राधा के। शेप सरल हैं।

व्याख्या—कोई गोपी तो राधा का मुख चूमती है, कोई उसकी भुजाओं को ही चूमती हैं और कोई-कोई गोपी उसकी उन अलकों को चूमती है जिनमें प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ संभोग के कारण छलकी हुई पसीने की बूदें झलक रही थीं।

गोपियाँ अपने अंचलों से राधा के अश्रुकण परिपूर्ण सुन्दर लोचनों को पोंछती हैं और सुन्दर लाल कपोलों पर (रति-रण में पड़े) रदक्षतों (प्रियतम के चुम्बनादि कृत) एवं पान की पीक की लीक को वे अपने अंचलों से दूर करते हैं।

सब कों सब सुख बरसत सरसत बड़ हितकारी।
तिन महि पुनि ये गोप वधू प्रिय निपट तिहारी ॥४७॥
जब पुनि बन को जात सात जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जानति पिय तुम बिनु ॥४८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—हे प्रियतम ! तुम तो समस्त ब्रज के बड़े ही हितैपी थे इसीलिए यथावसर सभी के लिए सभी प्रकार के सुख प्रदान करते और उन्हें सुरक्षित करते रहते थे। और उनमें भी ये समस्त गोप-वधुएँ तो तुम्हें अत्यन्त प्रिय थीं।

जब तुम वन को जाते थे तो (तुम्हारे बिना) हमारा दिन सात युगों के समान व्यतीत होता था। हमारा दिन तुम्हारे विना जिस प्रकार बीतता था उसे हमहीं जानती हैं तुम्हें उसका क्या अनुमान हो सकता है। (विनोक्ति और उपमा)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—'प्रेम की पीर सोइ जन जानै जा घट लागी होइ' इसी प्रकार गोपियाँ ही अपनी प्रेम-पीड़ा का अनुभव कर सकती हैं। और क्योंकि विरह-व्यथा अकथनीय होती है इसीलिए उसे बता भी नहीं सकती हैं।

जब पुनि बिपिन तें आवत सुंदर आनन देखें।
तब इन विधिना क्रूर रची लै नैन निमेखें ॥४९॥
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि पषान सों छेंकि दई सो कछु न बसाई ॥५०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—जब तुम लौटकर वन से आते थे तो तुम्हारे सुन्दर मुख को देखकर कहीं इन आँखों को एक पल के लिए चैन मिलता था परन्तु ब्रह्मा ने इन क्रूर बरौनियों का भी निर्माण कर दिया है जो पूर्ण रूपेण रूप-दर्शन में बाधक ही रहती हैं।

कहाँ तो हमारा तुम्हारे प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम और कहाँ तुम्हारी यह निष्ठुरता। अर्थात् दोनों की तुलना करके देखो। पर तुम प्रेम करने योग्य नहीं ठहरते या तुम्हीं अपराधी ठहरते हो। मणि कहीं पत्थर पर जड़ी जाती है किन्तु फिर भी तो ब्रह्मा पर कोई वश नहीं चलता। (अर्थान्तरन्यास अलंकार।)

विशेष—कोई आपत्ति उठा सकता है कि गोपियाँ इस प्रकार स्वयं को मणि और कृष्ण को पत्थर मानकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं। उनमें अहम्मन्यता है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। यहाँ व्यवहारों से तात्पर्य लिया गया है। गोपियों का हृदय सचमुच ही किसी मणि के समान निर्मल था जिस पर श्रीकृष्ण का प्रतिबिम्ब पड़ता है। आत्मा-परमात्मा का यही संबंध माना गया है।

दौरि लपटि गई ललित पियहिं बनि कहत न आवै।
मीन उछरि जस परहिं पुलिहिं पुनि पानी पावै ॥५१॥
कोउ पिय भुज लिपटाय रहीं नव नारि नवेली।
जनु सुंदर सिंगार बिटप लपटी छबि बेली ॥५२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—पुलिहिं=बालुकामय किनारा। शेष सरल हैं।

व्याख्या—दौड़कर गोपियाँ सुन्दर लाल श्रीकृष्ण से लिपट गईं उस समय की उनकी छवि कहते हुए नहीं बन पड़ती है या उस समय का उनका सुख अकथनीय है। ऐसा लगा मानो मछली उछलकर बालुकामय किनारे पर आ गिरे फिर तुरन्त ही पानी उसे मिल जाय (उदाहरण या उत्प्रेक्षा।)

कोई अकेली गोपी प्रियतम कृष्ण की भुजा से लिपटकर मटक रही है। ऐसा जान पड़ता है मानो सुन्दर शृंगार रूपी वृक्ष से छवि की लता लिपट रही हो (उत्प्रेक्षा, रूपक या रूपकगर्भित उत्प्रेक्षा।)

कोउ कोमल-पद कमल-कुचन बिच राखि रही यों।
परम कृपन धन पाइ हिये सों लाइ रहत ज्यों ॥५३॥
कोउ पिय रूप नयन भरि उर में धरि-धरि ध्यावति।
मधु माँखी लौं डीठि दुहुँ दिसि अति छवि पावति ॥५४॥

शब्दार्थ—कोमल पद-कमल=मृदुल पगरूपी कमल। कुचन बिच=उरोजों के बीच में। कृपन=कंजूस। शेष सरल हैं।

व्याख्या—कोई कृष्ण के कोमल पद-कमलों को अपने उरोजों के बीच में इस प्रकार रख रही हैं मानो किसी कृपण व्यक्ति को अचानक ही अपार धन मिल गया हो और वह उसे सँभालकर रख रहा हो। (रूपक, उत्प्रेक्षा-अलंकार)

विशेष—यद्यपि यह भाव भागवत का ही है किन्तु इसके साथ उत्प्रेक्षा नन्ददासजी ने मौलिक दी है।

कोई प्यारे कृष्ण के रूप को नेत्रों में भर-भरकर अपने हृदय में इस प्रकार रखे ले रही है और इस प्रकार प्रसन्न होकर देख रही है जैसे मधुमक्खी अपने चारों ओर मधु को देखकर प्रसन्न होती है। (उपमा)

कोउ दसननि दल अधर बिंब गोविंदहिं ताड़ति।
कोउ इक चार चकोर चखनि मुख चंद निहारति ॥५५॥
कहुँ काजल कहुँ कुमकुम कहुँ-कहुँ पीक लीक वर।
तहँ राजत नंद-नंद कंद कंदर्प-दर्प-हर ॥५६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—दसननिदल = दन्त-समूह । अधर बिंव = ओष्ठ रूपी बिंवाफल । ताड़ति = ताड़ना देती है परन्तु यहाँ लक्षणा से अर्थ होगा साक्रोश देखना । शेप सरल हैं ।

व्याख्या—कोई अपने दन्त-समूह के नीचे ओष्ठ रूपी बिंबा फल को दबाकर गोविन्द को देखती है । कोई अपने सुन्दर चकोर के समान नेत्रों से मुख रूपी चन्द्रमा को एकटक देखती है । (रूपक और उपमा)

श्रीकृष्ण के शरीर पर कहीं काजल, कहीं कुंकुम और कहीं पान की पीक के चिह्न हैं । वहाँ (गोपियों के बिछाए हुए वस्त्रों पर) कृष्ण जो मदन के दर्प को हर चुके थे बैठे ।

विशेष—(१) गोपियों ने दाँतों तले ओठ इसलिए दबाए कि उन्हें कृष्ण के अचानक प्रगट होने पर आश्चर्य था । इसके मूल में गोपियों का लज्जा-भाव भी देखा जा सकता है क्योंकि हमें जब कोई बात न कहकर मौन रहने की इच्छा होती है लेकिन स्वभावतः यदि हम हँसमुख हैं तो ऐसा ही करते हैं ।

(२) कृष्ण के शरीर पर काजल, कुमकुम इत्यादि राधा के साथ की गई रति के प्रमाण हैं । कदाचित् कृष्ण और राधा इससे पूर्व रति ही में व्यस्त थे ।

(३) यह भाव नन्ददासजी ने भागवत से ही लिखा है किन्तु उसे कहने का ढंग मौलिक है ।

जोगी जन बन जाइ जतन करि कोटि जनम पचि ।
अति निर्मल करि राखत हिय रुचि आसन रचि ।।५७।।
कछु घिनात तहँ जात नवल नागर मोहन हरि ।
ब्रज की तियन के अंबर पर बैठे अति रुचि करि ।।५८।।

शब्दार्थ—पचि = हारकर परंतु यहाँ प्रयत्न पूर्वक ।

व्याख्या—योगी जन वन में जाकर करोड़ों जन्मों के यत्नों से अपने हृदय को शुद्ध करके रखते हैं परंतु उनके ऐसे निर्मल हृदयों में भी कृष्ण कठिनाई से जाते हैं कृष्ण वहाँ जाने में कुछ ढ़िलमिलाते हैं । परंतु वही सुन्दर चतुर हरि (श्रीकृष्ण) ब्रज-युवतियों के वस्त्रों पर अत्यंत प्रेम से बैठे हुए हैं । (विशेषोक्ति)

विशेष—यहाँ नन्ददासजी ने ज्ञानयोग और भक्ति में अंतर स्पष्ट करते हुए भक्ति को उच्च आसन पर आसीन किया है । पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी 'जतन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करि कोटि जनमपचि' से स्पष्ट होता है। नन्ददासजी योग के माध्यम से हरि-प्राप्ति को नकारते तो नहीं परन्तु योगियों को सान्निध्य एवं सम्मिलन-सुख भी उपलब्धि नहीं मानते।

जे भजतन कों भजें सजें अपने स्वारथ हित।
जैसे पसु जु परस्पर चाटत सुख मानत चित ॥५९॥
जे अनभजतनि भजें तीन धरमी सुखकारी।
जैसे मातु पितादि करें सुत की रखवारी ॥६०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—जो लोग उन लोगों को भजते हैं जो उन्हें भजते हैं वे स्वार्थ द्वारा ही भजते हैं। उनका यह कहना ठीक वैसा ही है जैसा चित्त में सुख मान-कर पशुओं का एक-दूसरे को चाटना।

जो लोग स्वार्थ-रहित प्रेम करते हैं वे या तो सुखार्थी हैं या धर्मार्थी; जैसे माता-पिता अपनी संतान की रक्षा करते हैं।

विशेष—(१) यदि चिन्तन करके देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वस्तुतः प्रेम को प्रतिदान की आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए कभी-कभी एकांगी प्रेम चलता रहता हैं और अन्ततोगत्वा उसी प्रेम के बल पर भावनात्मक प्राबल्य के कारण दूसरा पक्ष भी प्रेम करने लगता है।

प्रतिदान चाहने वाला प्रेमी स्वार्थी ही होगा।

(६) उदाहरण अलंकार है।

जे दुहुअनि कों तजें अहैं ते गुरुद्रोही मैं।
आतम राम कै पूर्ण काम कै अकृतज्ञी हैं ॥६१॥
अकृतज्ञी हौं नाहिं तुमरे चित प्रेम बढ़ावन।
निधन महाधन लाभ सरिस चित चोप लगावन ॥६२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—कृष्ण गोपियों से कहते हैं कि जो लोग इन दोनों प्रकार के प्रेम को छोड़ देते हैं (अर्थात् स्वार्थ, सुख और धर्म सभी को ध्यान में न रखकर प्रेम करते हैं) वे ज्ञानी हैं। इन ज्ञानियों में भी ३ भेद हैं—आप्त काम, गुरुद्रोही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कृतघ्न हृदयवाले।

मैं अकृतज्ञ प्रेमी नहीं हूँ इसीलिए तुम्हारे हृदय में प्रेम बढ़ाने के लिए यह सब कुछ किया था। तुम इसे ऐसे ही समझो जैसे किसी निर्धन व्यक्ति को महान धन की उपलब्धि के प्रति चाव लगा रहता है।

विशेष—उपमालंकार।

तुम जु करी सो कोउ न करी हे नवल किसोरी।
लोक वेद की सुदृढ़ स्त्रिखला तृन सम तोरी ॥६३॥
कलपबृच्छ जड़ सुनिय सकल चिंतनि फलदायक।
यह ब्रजराज-कुमार सबै सुखदायक नायक ॥६४॥

शब्दार्थ—तृनसम=तिनके के समान। तोरी=मोड़ दी। शेष सरल हैं।

व्याख्या—हे नवल किशोरी गोपियो, सुनो! जैसी प्रीति तुम लोगों ने मुझसे की है वैसी किसीने भी नहीं की। तुमने मेरे लिए लोक-लाज और शास्त्रों के भय की कड़ी जंजीर को भी तिनके के समान तोड़ दिया है।

सुनते हैं कल्प-वृक्ष जो जड़ है वह भी सभी को उनकी इच्छानुसार अभीष्ट फल को देनेवाला होता है। वे ब्रजराज कुमार अर्थात् नंदलाल सभी को अभीष्ट सुख प्रदान करनेवाले नायक हैं।

विशेष—जड़ और चेतन में पर्याप्त अन्तर होता है। जब कल्पवृक्ष जैसा जड़ पदार्थ भी अभीष्ट फलदायक है तो कृष्ण जो चैतन्य हैं उनके विषय में तो यह सोचना ही व्यर्थ है कि फल नहीं मिलेगा।

एक बार ब्रजबाल लाल सब चढ़े जोर कर।
नव तन इत उत होत सबै नितंत बिचित्र बर ॥६५॥
मनि दर्पन सम अवनि रमनि तापर छवि देहीं।
बिथुरित कुंडल अलक तिलक झुकि झाईं लेहीं ॥६६॥

शब्दार्थ—ब्रजबाल=राधा। लाल=हरि। जोर कर=हाथ जोड़कर तात्पर्य एक दूसरे के हाथों को पकड़ कर। तिनसन=उनके साथ। इतउत=इधर उधर। बर=दूलह, श्रेष्ठ। रमनि=रमणी। विलुलित=चलते हुए। तिलक=टीके। झाईं=प्रतिबिंब।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याख्या—एक समय उस कमल पर श्रीकृष्ण एक व्रज-बाला (तात्पर्य राधा से है) का हाथ पकड़कर चढ़ गए। उसके साथ इधर-उधर विचित्रवर श्रीकृष्ण सब प्रकार से नाचते थे।

मणि रचित दर्पण सी पृथ्वी पर रमणियाँ शोभा दे रही हैं और उनके चंचल कुण्डल, अलकावली और तिलक की परछाइयों को झुक-झुककर देखती हैं।

विशेष—(१) यहाँ आत्मा परमात्मा का नृत्य ही समझिए। गोपियों रूपी सामान्य आत्माएँ प्रभु प्रतिबिंबवाद में ही मुग्ध होकर नाचती हैं। पृथ्वी पर प्रभु का प्रतिबिंब ही रहता है। भक्त-भावना उसीको सत्यव्रत लेकर रमण करती है। यही माया ब्रह्म का नृत्य—कौतुक है। रास-नृत्य वृत्त के केन्द्र में है। सशक्ति भगवान और चारों ओर आत्माओं रूपी गोपियों का वृन्द है। यहीं प्रतिबिंबवाद का भी सुन्दर आभास करा दिया गया है। तुलना कीजिए—

हौं समुझ्यौं निरधार यह जग काँचे काँच सौ।
एकै रूप अपार प्रतिबिंबित लखिययत जहाँ॥

—'बिहारी सतसई'

(२) उपमा अलंकार है।

एकहि मूरति ललित लाल आलात की नाईं।
सबके अंसन धरी साँवरे बाँह सोहाईं॥६७॥
कमल कर्णिका मध्य जु स्यामा स्याम बनी छबि।
द्वै द्वै गोपियन विच पुनि मंडल माहि लखै फबि॥६८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—आलात की भाँति सुन्दर श्रीकृष्ण की एक ही मूर्ति अपनी साँवरी भुजाओं को समस्त गोपियों के स्कंधों पर रखकर अत्यंत सुशोभित हुई।

कमल की कर्णिका के मध्य में मुग्धा राधिका और कृष्ण सुशोभित हैं। और फिर चारों ओर दो-दो गोपियों के मंडल के बीच श्रीकृष्ण और भी सुन्दर लगते हैं।

विशेष—(१) पुनः वही दार्शनिक भाव यहाँ भी हैं। यहाँ कृष्ण की योग माया दिखाई दी है। चित्र देखिए कि बीचोंबीच राधा और कृष्ण हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके चारों ओर वृत्त में दो-दो गोपियों के बीच हरि मूर्ति है। इस संसार चक्र के केन्द्र में सशक्ति ब्रह्म या ईश्वर है अथवा विश्वकेन्द्र में माया ब्रह्म है। चारों ओर संसार है जिसमें ब्रह्म सर्वत्र रम रहा है। भक्तात्माओं को प्राप्त होनेवाले प्रभु-सान्निध्य सुख की व्यंजना भी मिलती है। साथ ही एक में अनेक और अनेक में एक के दार्शनिक भाव की भी ध्वनि है।

(२) पुनरुक्ति प्रकाश।

मूरति एक अनेक लगत अद्भुत सोभा अस।
अविकल दरपन मँडल माँहि बिधु आनि परत जस ॥६९॥
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि मधि नील मनी अद्भुत झलकै जस ॥७०॥

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—एक मूर्ति की अनेकता की शोभा ऐसी अद्भुत दिखाई देती है मानो सुन्दर दर्पणों में एक ही विधु के अनेक प्रतिबिंब दिखाई दे रहे हों।

गौरवर्ण गोपियों के बीच श्यामवर्ण श्रीकृष्ण इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे रत्नों के ढेर या माला के मध्य में अद्भुत नील मणि झलकती हो।

विशेष—(१) उत्प्रेक्षा और उदाहरण अलंकार है।

मिलि जु भई इक अद्भुत धुनि तिहि सुनि-सुनि मोहैं।
सुर-नर-गन गंधर्व कछु न जानत हम को हैं ॥७१॥
अनाधिकारी जिते तिते सुनि - सुनि मुरझाए।
अद्भुत रास-बिलास सुरस देखन नहिं पाए ॥७२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—समस्त ध्वनियों से मिलकर जो एक अद्भुत ध्वनि हुई उसे सुन-सुनकर देव-मनुज, गण और गंधर्वगण मोहित हो गए और वे इतने आत्म-विस्मृत हो गए कि अपने विषय में कुछ भी नहीं जान पा रहे हैं कि वह कौन हैं।

लेकिन जितने भी अनधिकारी लोगों ने इस ध्वनि को सुना वे इसे सुनकर मोहित नहीं हुए अपितु वे मुरझा गए! और वे इस अद्भुत रास-विलास को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देख नहीं पाए न, इसके द्वारा निःस्तंन रस का ही आस्वादन कर सके।

विशेष—(१) वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय भक्ति का आभास यहाँ मिलता है।

(२) पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

वृन्दावन कें त्रिगुन पौन सो बिजन बिलोलैं।
जहँ-जहँ श्रमित बिलोकैं तहँ-तहँ रंग भरयो डोलैं ॥७३॥
राग - रागिनी - मंडल ढिग तहँ ठाढ़े गावत।
ताल पखावज आवज वीना मुरज बजावत ॥७४॥

शब्दार्थ—त्रिगुण पौन=त्रिगुणात्मक पवन अर्थात् शीतल, मंद सुगंध पवन। शेप सरल हैं।

व्याख्य—वृन्दावन का शीतल-मंद-सुगन्ध पवन पंखा-सा झल रहा है। और जहाँ-जहाँ इन रास-रत श्रीकृष्ण एवं गोपिकाओं के शरीर को श्रमित देखता वहीं-वहीं रंग में भरा तात्पर्य प्रेमपूर्वक उनके शरीर का स्पर्श करता है।

इनके समीप ही खड़े होकर राग-रागनियों के समूह गायन कर रहे हैं और ताल इत्यादि के साथ वीणा, मुरज, पखावज इत्यादि को वजा रहे हैं।

ललना अद्‌भुत राग लेति. सोभित सोभा यों।
सुभग घटा पर छंटा छबीली थिरकि रहत ज्यों ॥७५॥
उड़े अरुन पट बास रास मंडल मंडित अस।
मनों सघन अनुराग घटा उमड़त घुमड़त रस ॥७६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—समस्त गोपियाँ जो अद्‌भुत राग अलापती हैं तो वे इस प्रकार सुशोभित होती हैं जिस प्रकार सुन्दर घटा के ऊपर छबीली छटा थिरकती है।

सुवास मण्डित अरुन पट इस प्रकार उड़े मानो घनी अनुराग की घटाएँ उमड़ी आरहीं हों और रस घुमड़ रहा हो।

विशेष—रास के बाद प्रभात होने को ही है इसीलिए अरुण वस्त्रों का उड़ना दिखाया गया है। उदाहरण गर्भित उत्प्रेक्षा है।

ताकी घूँघरि-मत्त मधुप वन भ्रमत जु ऐसे।
प्रेम जाल के गोल कछुक कवि उपजत जैसे ॥७७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रम भरि सुंदर बुंद रंग भरि कहुं-कहुं बरसत।
प्रेम भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥७८॥

शब्दार्थ—धूंधरि=धुंधलाहट।

व्याख्या—उसकी धुंधलाहट भरी भीनी झलमलाहट के बीच मत्त कृष्ण रूपी मधुप इस प्रकार भ्रमण कर रहे हैं जैसे प्रेम-जाल से परिपूर्ण अर्थात् सरसता से भरे अरुण वर्ण वाले डोरों से पुरी हुई पुतली का गोलक शोभा पा रहा हो।

श्रम के कारण झलकी हुई बूंदों और रंग दोनों को भरकर कहीं-कहीं बरसाता है। जिनके हृदय प्रेम से परिपूर्ण हैं उनके हृदयों को यह वातावरण अत्यन्त सरसित कर देता है।

पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि मुरली-रव अस।
कुहुकि-कुहुकि मनो नाचत मंजुल मोर भर्यो रस ॥७९॥
अपन-अपन जतगती भेद नर्तन लागति जब।
अलि गंधर्व-नृप से सब सुंदर गान करत तब ॥८०॥

विशेष—उत्प्रेक्षालंकार।

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—प्रियतम के मुकुट में लटकी हुई लटकनें, उनका मटक-मटक कर चलना और मुरली का सुन्दर शब्द ऐसा लगता था मानो प्रेम-भाव से परिपूर्ण कोई मयूर कुहुक-कुहुककर नृत्य कर रहा हो।

और जब अपने मनों में मत्त गोपियाँ गीत गाती हुई नाचने लगती थीं तो अपनी सरस स्वर लहरी से मधुपों, गंधर्वों इत्यादि से भी सुन्दर गायन करती थीं।

विशेष—उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक के साथ ही साथ पुनरुक्तिप्रकाश।

कबहुँ परस्पर नितंत लटकनि मंडल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसकनि मंजुल तत्थेइ बोलनि ॥८१॥
कल किंकिनि गुञ्जार तार नूपुर बीना पुनि।
मृदुल मुरज टंकार भँवर झंकार मिली धुनि ॥८२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—कभी आपस में मंडल में मत्त होकर मटकती हुई फिरती हैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य करती हैं और मुस्कराकर जब तत्थेई बोलती हैं तो करोड़ों घट अमृत-रस से अच्छी लगती हैं।

उनकी किंकिणी का सुन्दर स्वर नूपुर की ताल और फिर वीणा की झंकार ये सभी कोमल मुरज की झंकार और भौरों की गुंजार के साथ मिलकर एक अद्‌भुत और अत्यन्त सरस ध्वनि की सृष्टि करती हैं।

विशेष—उपमालंकार है।

सिर तें कुसुम जु सुंदर बरसत अति आनँद भरि।
जनु पद गति पर रीझि अलक पूजति पुहपनि करि ॥८३॥
कोउ तिनहूं तें अधिक अमिस्त्रित सुर जुत गति नइ।
सबको छेकि छबीली अद्‌भुत गान करत भइ ॥८४॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—किसी-किसी गोपी के केशों में गुंथे-फूल गिर पड़ते हैं। वे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। ऐसा लगता है मानो अत्यन्त आनन्द में भरकर पद-गति पर रीझकर अलकों ने पैरों को पुष्पों से पूजा है।

कोई इन समस्त गोपियों से भी अधिक और अलग प्रकार का अत्यन्त सुन्दर नूतन गति के साथ नृत्य करती है और यह छबीली सभी को पीछे छोड़कर अद्‌भुत गान छेड़ती है।

विशेष—उत्प्रेक्षालंकार।

गंडन सो मिलि ललित गंड-मंडन मंडित छबि।
कुंडल सों कच उरझे मुरझे जहं बड़े कबि ॥८५॥
अद्‌भुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिं कहि आवै।
ज्यों मूकै रस को चसको मनहीं मन भावै ॥८६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—कोई-कोई गोपियाँ अपने कपोल तटों को आपस में मिला लेती हैं। उस समय उनके कपोल तटों की छवि और भी अधिक सुन्दर बन पड़ती है। उस समय उनके कानों में लटकते हुए कुण्डलों से उनके केश परस्पर उलझ जाते हैं जिनके वर्णन करने में अनेक कवि उलझ गए हैं।

उस समय रास से अद्‌भुत रस निःसृत हो रहा था, उसका वर्णन करते नहीं बनता। वह तो इसी प्रकार अनुभूतिजन्य है जैसे गूंगे व्यक्ति को मधुर वस्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का आस्वाद मन ही मन में तो अनुभूत होता है किन्तु वह उसके विषय में कुछ भी बता नहीं सकता है।

विशेष—यमक और उदाहरण अलंकार हैं।

कही न परै महेस सेस पैं गुरु गनेस पैं।
चकित जहाँ सरसुती इती मति कहँ सुरेस पं ॥८७॥
कुसुम धूरि धूँधरे कुंज मधुकरन पुंज जहँ।
ऐसें ही रस अलस लटकि कीनौ प्रवेस तहँ ॥८८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—इस रास-क्रीड़ा की रसानन्द की स्थिति शिव, शेषनाग, गुरु (बृहस्पति) और गणेश पर कहते ही नहीं बनती। जहाँ स्वयं सरस्वती भी वर्णन करने में चकराती हो फिर देवेन्द्र पर इतनी बुद्धि कहाँ जो उसका वर्णन कर सके।

मधुकर-पुंज पराग-पूरित कुंजों में यों प्रविष्ट हुआ है मानो रसावेश से बाध्य होकर आया हो।

विशेष—अतिशयोक्ति और उदाहरण अलंकार के साथ ही साथ काकु-वक्रोक्ति भी है।

नव पल्लव कर सैनी अति सुख दैनी तिहँ तर।
तावर सुमन उसेसी मधुर निरेसी तिहिं पर ॥८९॥
कबहुँ परस्पर छबि सों भरावत प्रेम-मदन भर।
प्रकृत काम छाती अजहूँ धरकत जाके डर ॥९०॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—सरस सुखद नव पल्लव-पुंज और सुमन समूह को वहाँ देखकर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।

कभी परस्पर छवि के साथ प्रेम मदन को पराजित कर देता था। जिसे देखकर प्रकृत काम की छाती आज भी उसी के डर से काँप जाती है।

बिलसति अति रति जुद्ध रुद्ध सों रत रस-सागर।
उज्जल प्रेम उजागर सब गुन आगर नागर ॥९१॥
हार-हार में उरझि-उरझि बहियाँ में बहियाँ।
नील पीत पट उरझि-उरझि बेसर नथ महियाँ ॥९२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—कृष्ण और राधा के रति-विलास-युद्ध से अत्यन्त रस का सागर उमड़ रहा है। जिनके तन में ऐसे श्रीकृष्ण जो कि उज्ज्वल प्रेम के प्रकाशक, नेह-नागर और गुणागार हैं उनकी बाँहें राधा की बाँहों में, और नील-पीतपट उलझकर बेसर और नथ में उलझ रहे हैं।

विशेष—(१) अनुप्रास की छटा सराहनीय है।

(२) पदार्थावृत्ति दीपक का चातुर्यमय प्रयोग अत्यंत सुन्दर बन पड़ा है।

श्रम भरि सुंदर अंग रास रस ललित-बलित गति।
अंसनि पर भुजबर दीने सोभित सोभा अति ॥६३॥
कमल बदन पर अलकनि कहुँ-कहुँ श्रम जल झलकनि।
सदा बसौ मन मेरे मंजु मुकुट की लटकनि ॥६४॥

शब्दार्थ—गति = रीति।

व्याख्या—सुन्दर, श्रमित तथा सरस अंग ललित रीति से परस्पर मिलते हैं हरि के स्कंधों पर राधा अपनी भुजाएँ रखे अत्यन्त शोभा से लटक रही हैं। उनके कमल के समान मुख पर अलकें और कहीं-कहीं रति-श्रम के कारण छलके स्वेद-कण झलक रहे हैं। नन्ददासजी कहते हैं कि राधा के वक्ष पर लटकती हुई कृष्ण के मोर मुकुट की लटकनि मेरे मन में सदा बसती रहे।

विशेष—अनुप्रास की छटा।

टूटि मुकुति की माल छूटि रहि साँवरे उर पर।
जनु सिंगार पहार तें सुरसरि धाइ धर्सी धर ॥६५॥
घूमत रस भरे नैन चलनि मलकनि मनहरनी।
जनु गजराज बिराजै सँग लिये तरुनी करनी ॥६६॥

शब्दार्थ—सुरसरि = गंगा।

व्याख्या—टूटी हुई मोतियों की माला हरि के साँवरे हृदय पर यों पड़ी हुई है जैसे हिमराज से गंगाजी की दो धाराएँ पृथ्वी पर गिर रही हों।

दोनों के प्रेम से परिपूर्ण नेत्र घूम रहे हैं, तात्पर्य चंचलता से इधर-उधर देख रहे हैं। उन दोनों की चाल और मटकनि दोनों ही चित्ताकर्षक हैं। ऐसा लगता है मानो गजराज अपने साथ किसी तरुणी हस्तिनी को लेकर घूम रहा हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष—(१) उत्प्रेक्षालंकार।

(२) पहला चित्र रति-क्रिया का है और दूसरा रति के बाद श्रम-शैथिल्य को मिटाने के लिए आराम से बैठने का या धीरे-धीरे चलने का।

जहँ काहू को गम ना जमुना अति सुख दैनी।
जगमगाति तट घाट महा मनिजटित निसैनी ।।९७।।
कल विटपनि सों लपटि लता फूलीं झूलीं जल।
बिलसत सारस हंस बंस बिगसत अंबुज दल ।।९८।।

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—जहाँ किसी को भी कोई किसी भी प्रकार का कष्ट इसलिए नहीं होता कि यमुना सर्व प्रकार के और सभी को सुख देने वाली है। वहाँ वही यमुना अपने किनारे पर बने घाटों पर अत्यन्त सुन्दर मणि जटित सीढ़ियों पर जगमगा रही है। पुष्पित लताएँ सुन्दर-सुन्दर वृक्षों से लिपटी हुई यमुना के गल में झूल रही हैं। यमुना-जल में सारस हँस-विलस रहे हैं और यत्र-तत्र अनेक प्रकार के कमल फूल रहे हैं।

विशेष—(१) यमुना का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। लताओं के झूलने से तात्पर्य यह है कि लताएँ वृक्षों से लिपटकर यमुना के जल में गिर गई हैं (झुक गई हैं) या उनका प्रतिविंब यमुना जल में पड़ रहा है जो मंद-मंद बहती पवन के झकोरों से उठने वाली लहरों के कारण हिलता रहता है। यही उनका झूलना है। कितनी सुन्दर लक्षणा है।

(२) काव्यलिंग अलंकार है।

तहँ अद्भुत जल-केलि बनी छबि कही न परई।
जिहि चितवत चित रंजक बंचक कलिमल हरई ।।९९।।
कोउ आपुन हो धँसी लसी पिय सों रति मानी।
कोउ पट गहि कोउ लट गहि छनि सों पानी आनी ।।१००।।

शब्दार्थ—रंचक=तनिक-सा भी। पानी आनी=पानी में उतर आईं।

व्याख्या—वहीं अद्भुत जल-क्रीड़ाएँ जो की गईं उनकी छवि अवर्णनीय है जिसे थोड़ी-सी देर देखने पर ही हृदय से समस्त पाप दूर हो जाते हैं। यमुना जल में विहार हेतु कोई गोपी तो अकेली ही और स्वयं ही प्रविष्ट हो गई, और कोई प्रियतम से प्रेम जताती हुई उसके पीतपट को पकड़कर, कोई उसकी केश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लटों को पकड़कर क्षणभर में ही पानी में आ गईं।

विशेष—कारकदीपक अलंकार।

मुख कमलनि के आगें जल अरबिंद लगे अस।
भोर भएँ भौननि के दीपक मंद परत जस ॥१०१॥
कबहुँ परस्पर छिरकत मंजुल अंजुल भरि-भरि।
अरुन कमल मंडली फाग खेलत रस रँग अरि ॥१०२॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—गोपियों के मुख-कमलों के समक्ष यमुना के पानी में खिले कमल ऐसे लगे जैसे प्रभात बेला के आगमन पर घरों के दीपक मंद पड़ने लगते है। कहने का तात्पर्य यह है कि यमुना-जल के कमलों की शोभा गोपियों के मुखों की दीप्ति के समक्ष क्षीण पड़ गई थी।

कभी कृष्ण और गोपियाँ अपनी पवित्र अंगुलियों में भर-भरकर जल छिड़कते थे एक दूसरे के ऊपर; और उस समय वे ऐसें लगते थे मानो रक्ताम्बुजों की मंडली रस-रंग से फाग खेलती हो।

विशेष—रूपक और व्यतिरेक के साथ ही साथ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

रुचिर दृगंचल चंचल अंचल में झलकत अस।
सरस कनक के कंजन खंजन जाल परत जस ॥१०३॥
कमलनि तजि-तजि अलिगन मुख-कमलनि आवति जब।
छवि सों छबीली बाल छिपति जल में बुड़कनि तब ॥१०४॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—सुन्दर चलते हुए नेत्र फड़फड़ाते हुए प्रज्ज्वल अंचल में से ऐसे प्रतीत होते हैं मानो सरल स्वर्ण कमलों के बीच खंजन पक्षी जाल में पड़े हुए हों।

और जब कमलों को छोड़कर अलि-समूह गोपियों के मुख-कमलों की ओर आने लगता है तब समस्त छबीली गोपियाँ डुबकी लगा-लगाकर जल में छिप जाती हैं।

विशेष—उत्प्रेक्षा, वीप्सा और व्यतिरेक की व्यंजना है।

जमुना जल में दुरि सुरकामिनि करत कलोलें।
जनु घन भीतर-भीतर ससि गन तारे डोलें ॥१०५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलिगन कमलनि तजि कै मुख-कमलनि पर आवत।
छवि सों छबिले छैल भेंटि तेहि छिनहिं उड़ावत ॥१०६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—यमुना के जल में छिप-छिपकर ये देव-बालाएँ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हैं। उस समय ऐसा लग रहा है मानो नवल बादलों के भीतर ही भीतर चन्द्रमा और तारागण डोल रहे हों।

भ्रमरों की टोलियाँ कमलों को छोड़कर गंध में लोभ से इनके मुख-कमलों की ओर आते हैं तो उसी समय छबीले छलिया श्रीकृष्ण के पास जाकर उन्हें उड़ा देते हैं।

विशेष—उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार हैं। 'भीतर-भीतर' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

कबहुँक सब मिलि बाल लाल कों छिरकति, छबि अस।
मनसिज पायो राज आजु अभिषेक होत जस ॥१०७॥
निकसि सुंदरी भाँति कांति मन ही मन भावै।
बाल-बैस छवि जैसे कवि पैं कही न आवै ॥१०८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—कभी सभी गोपियाँ मिलकर लाल (श्रीकृष्ण) के ऊपर पानी छिड़कती हैं। उस समय की शोभा कुछ ऐसी जान पड़ती है जैसे कामदेव को राज्य मिला हो और लोग (चावल तथा जल के छींटों से) उसका अभिषेक कर रहे हों।

जल से निकलकर इन सभी की अनेक प्रकार की कांति मन ही मन अच्छी लग रही है। बाल्यावस्था की इस सुन्दरता का कवि वर्णन नहीं कर सकता।

विशेष—(१) उदाहरण अलंकार है।

(२) 'बाल' शब्द से यहाँ निपट बाल्यावस्था से तात्पर्य नहीं है। यहाँ यह शब्द युवावस्था का ही द्योतक है इससे नन्ददास के मन में बालगोपालोपासना का भाव ध्वनित होता है।

भीजि बसन तन लपटि निपटही अद्भुत छबि सब।
नैनंनि के नहिं बैन बैन के नहिंन नैन तब ॥१०९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुचिर निचोरनि चुवत नीर लखि भे अधीर तनु।
तन बिछुरन की पीर चीर अँसुअन रोवत जनु।।११०।।

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—भीगे हुए वस्त्र गोपियों के अंगों से लिपट गए थे उस समय की उनकी शोभा कही नहीं जा सकती; क्योंकि उस समय सभी की अद्भुत छवि बन गई थी। वर्णन इसलिए नहीं किया जा सकता है कि वाणी के नेत्र नहीं हैं और नेत्रों के वाणी नहीं है।

गोपियाँ जब सुन्दर ढँग से वस्त्रों को निचोड़ने लगीं तो ऐसा लगा मानो शरीर से बिछोह होने की पीड़ावश आँसू ढुलकाकर वस्त्र रो रहे हों।

विशेष—(१) तुलना कीजिए—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
—तुलसी।

(२) कोमल करतल मसलति जुवति निचोरति वसना।
जनु रोवन तन-बिछुरन चीर ढरावत अँसुआ।।

(३) उत्प्रेक्षा अलंकार।

तब इक द्रुम-तन चितै कुँअर अस अज्ञा दीनी।
निरमोलक अंबर भूषन तिहिं बरषा कीनी।।१११।।
अप अपनी रुचि के पहिरे छबि परत न बरनी।
जग मोहिनी जिती तिनकी मोहिनि ब्रज-घरनी।।११२।।

शब्दार्थ— निरमोलक=अमूल्य। अप अपनी रुचि=अपनी-अपनी इच्छानुसार।

व्याख्या—तब कृष्ण ने एक वृक्ष की ओर देखकर उसे आज्ञा दी जिसके परिणामस्वरूप उसने अमूल्य वस्त्रों और आभूषणों की वर्षा की।

गोपियों ने इनमें से अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल वस्त्राभूषण पहने। इनकी उस समय की छवि वर्णित नहीं की जा सकती है। संसार में जितनी भी मोहित शक्तियाँ हैं वो भी उनके सौन्दर्य पर उस समय मोहित हो गईं (इसीलिए गोपियाँ उस समय उनकी भी मोहनेवाली होने के कारण सर्वाधिक या विश्व मोहनी हो रहीं थीं।)

विशेष—अनेकतासूचक वीप्सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्म मुहूरति कुँअर कान्ह निज घर आए तब।
गोपनि अपनी गोपी अपने ढिग पाईं सब ॥११३॥
ऐसे ही जीति सरद की परम मनोहर रातैं।
क्रीड़त हैं पिय रसिक सुदिन दिन अन - अन भातैं ॥११४॥

शब्दार्थ—अन-अन भातैं=अनेक प्रकार से।

व्याख्या—ब्रह्म मुहूर्त में जब श्रीकृष्ण अपने घर आए तो समस्त गोपों ने अपनी गोपियाँ अपने समीप ही पाईं।' इसी प्रकार शरद ऋतु की अत्यन्त मनोहर रात्रियों को जीतकर गोपियों के प्रियतम रसिक श्रीकृष्ण प्रत्येक दिन अनेक प्रकार से क्रीड़ाएँ करते हैं।

विशेष—(१) यहाँ संकेत रूप से रास का शाश्वत एवं नित्य नव कहा गया है। यह रास-नृत्य विश्व में सदैव होता रहता है। इसके कर्त्ता शाश्वत हरि हैं जिनका शरीर अति दुर्लभ एवं नव है। भागवत और सूर में भी ऐसे भाग मिलते हैं।

(२) 'अन-अन' और 'दिन-दिन' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

नित्त रास - रसमत्त नित्त गोपीजन - वल्लभ।
नित्त निगम यों कहत नित्त नव तन अति दुर्लभ ॥११५॥
यह लीला गोपाल लाल की परम रसावधि।
सिव सुक नारद सारद तिनको इहै महानिधि ॥११६॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—हरी का यह रास-रस तो नित्य है ही, गोपियां भी नित्य हैं; और उनके प्राण बल्लभ श्रीकृष्ण भी नित्य हैं तात्पर्य ये सभी शाश्वत हैं—कभी मिटते नहीं। इनके विषय में नित्यप्रति वेदादि इसी प्रकार कहते हैं कि ये अत्यन्त दुर्लभ हैं। और इनके शरीर नित्य नवीन रहते हैं।

गोपाल श्रीकृष्ण लाल की यह लीला पर रस की अवधि है अर्थात् इससे बढ़कर कोई दूसरा रस नहीं है। शिव, शुकदेव, नारद और शारद (सरस्वती) इन सभी के लिए यही महान् निधि है।

विशेष—अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नैन हीन के हेत नवल नागरि नारी जस।
मंद हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जानै रस ॥११७॥
हरि दासन को संग करै हरि-लीला गावै।
परम कांत एकांत भगति रस तौ भल पावै ॥११८॥

शब्दार्थ—सरल हैं।

व्याख्या—नेत्र विहीन नायक के लिए ज़िस प्रकार नव नागरी नायिका का यौवन रस, मन्द हास, सुन्दर कटाक्ष विलासादि सभी कुछ व्यर्थ हैं वह उन के रस से भिन्न नहीं हो सकता वैसे ही अंधर्मी आदि के लिए यह लीला भी व्यर्थ है। लेकिन जो व्यक्ति हरि-भक्तों की सत्संगति करता है। हरि-लीला का गायन करता है। वह परम सुन्दर एकांत भक्ति रस को भले पा सकें।

विशेष—(१) नेत्रहीन पट्ट की व्यंजना यहाँ महत्वपूर्ण है। नेत्रों का संबंध हमारे ज्ञान और भावना दोनों से होता है। इसीलिए यहाँ ध्वनित अर्थ यह है कि रासलीला को समझने के लिए ज्ञान और भक्ति दोनों ही आवश्यक हैं। तात्पर्य इसे समझने के लिए बोध-वृद्धि और भावना-शक्ति दोनों की अपेक्षा रहती है।

(२) तुलना के लिए लोलम्बराज का निम्नलिकित श्लोक देखिए—

अंधो यथा बार-वधू-विलासा,

और भी—

भामिनी कटाच्छ, मधुहास-परिहास मैन—
हीन कौं जथा सदा असार ही समुझिये।
त्यों ही जो धरमहीन भक्ति-भावनाविहीन,
राम-रस तौनहेतु अफल निरखिये।

(३) उदाहरण अलंकार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[illegible]-ग्रन्थालय,
[illegible], [illegible]
[illegible]-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi